• वर्ष ६३ • अंक ३ • मूल्य ₹१५

।। ओ३म् ।।

फरवरी (प्रथम) २०२१

पाक्षिक

परोपकारी

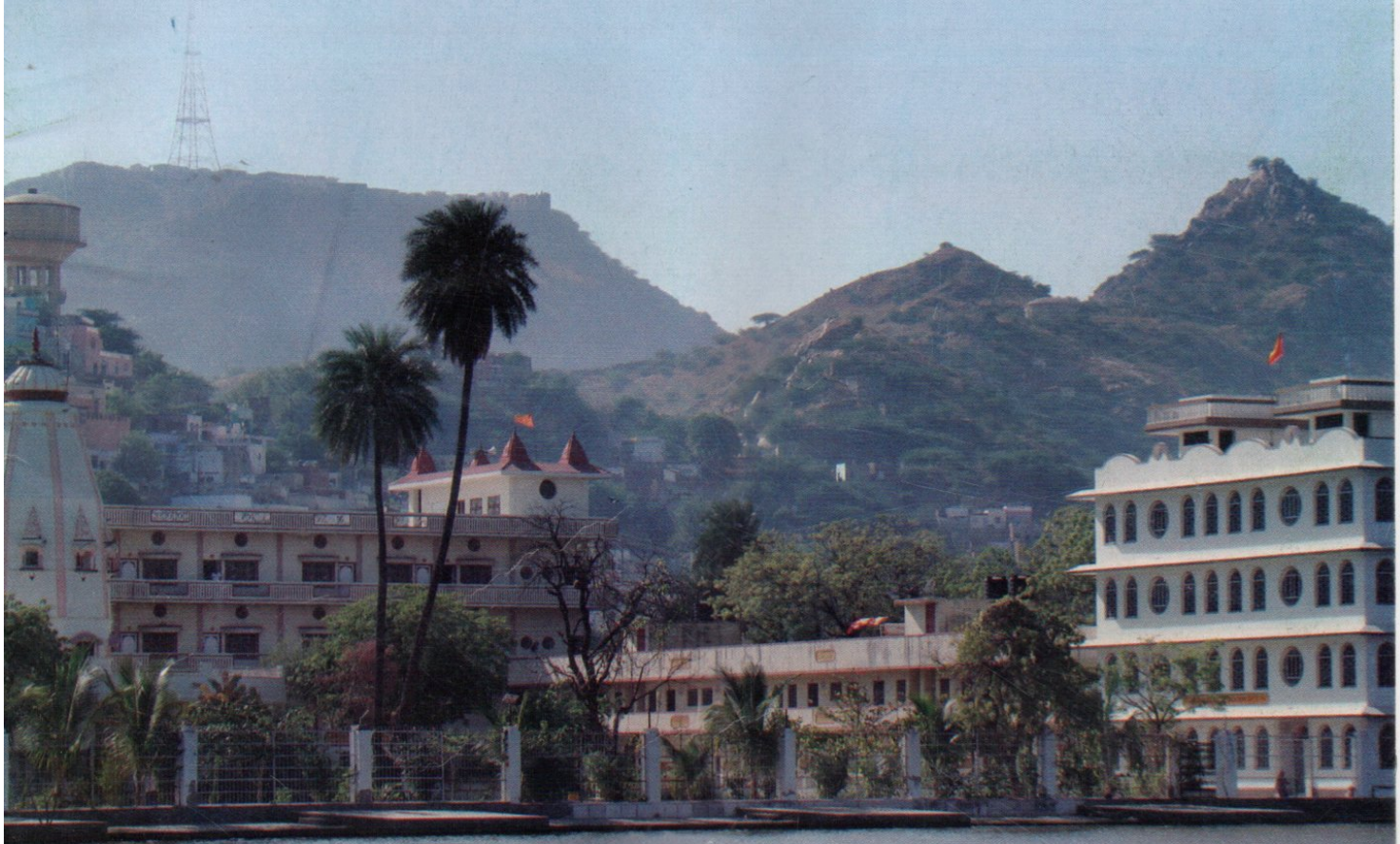

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित

ऋषि उद्यान आश्रम

ऋषि उद्यान आश्रम के सरस्वती भवन संग्रहालय में आर्यों के दर्शनार्थ रखी हुईं महर्षि दयानन्द सरस्वती की वस्तुएँ

आचमन पात्र

चाकू

कैंची व चिमटी

मसि (दवात) पात्र

थालियाँ

हस्ताक्षर की मोहर

छोटी तराजू

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
- का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६३ अंक : ०३
दयानन्दाब्दः १९६
विक्रम संवत्: माघ कृष्ण २०७७
कलि संवत्: ५१२१
सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,१२१

सम्पादक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाषः ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-मन्त्री, परोपकारिणी सभा
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क
भारत में
एक वर्ष-३०० रु.
पाँच वर्ष-१२०० रु.
आजीवन (१५ वर्ष) -३००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.
विदेश में
वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२१२७०

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

फरवरी प्रथम २०२१

अनुक्रम

०१. संस्कृत की रक्षा में संस्कृति ...	सम्पादकीय	०४
०२. मृत्यु सूक्त-६५	डॉ. धर्मवीर	०८
०३. कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	११
०४. ईश्वर-बहिष्कार का प्रयत्न	गंगाप्रसाद उपाध्याय	१७
०५. महर्षि दयानन्द का अग्निहोत्र में...	जयदेव अवस्थी	२५
०६. वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य		२६
०७. परोपकारिणी सभा स्थापना दिवस कार्यक्रम		२८
०८. संस्था की ओर से...		३१
०९. 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

संस्कृत की रक्षा में संस्कृति की रक्षा है

नयी शिक्षानीति २०२० का प्रारूप इसके अध्यक्ष और इसरो वैज्ञानिक श्री कस्तूरीरंगन के नेतृत्व में कई बदलावों के साथ प्रस्तुत हुआ है। किन्तु संस्कृत भाषा इसमें भी गौण विकल्प के रूप में उपेक्षा की शिकार हुई है। इस उपेक्षा के मूल में वर्तमान शिक्षा में शिक्षित-दीक्षित शिक्षाविदों द्वारा संस्कृत के मूलभूत महत्त्व और उपयोगिता से अनभिज्ञ होना एक उल्लेखनीय कारण है। वे लोग यह नहीं समझ पा रहे कि संस्कृत केवल एक भाषा-मात्र नहीं है अपितु भारतीय संस्कृति-सभ्यता की संवाहिका है और संस्कृत की रक्षा में संस्कृति-सभ्यता की रक्षा निहित है। इसके अतुलनीय महत्त्व को हम अनेक आयामों से समझ सकते हैं। ये विशेषताएँ भारत की किसी अन्य भाषा में दृष्टिगोचर नहीं होतीं।

सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् भी संस्कृत भाषा एवं संस्कृत वाङ्मय का महत्त्व सुरक्षित है। इसकी महत्ता, आवश्यकता और अपेक्षा को कोई बुद्धिमान् व्यक्ति नकार नहीं सकता, क्योंकि, भारत और संस्कृत का अन्योन्य सम्बन्ध है। यहाँ की संस्कृति-सभ्यता उसके प्रभाव से ओत-प्रोत है। यहाँ का एक-एक कण उससे अनुप्राणित है। भारतीय संस्कृति, सभ्यता, जीवनदर्शन अथवा धर्म, जिस पर हम गर्व कर सकें और जिसे गौरव का विषय बना सकें-वह सब संस्कृत भाषा में ही सन्निहित है। कहना न होगा कि संस्कृत-शिक्षा के बिना हमारी संस्कृति-सभ्यता, ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, परम्पराएँ जीवनदर्शन, धर्म, चिन्तन, सब कुछ अपूर्ण रह जाता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में संस्कृत-शिक्षा की उपयोगिता को लेकर जब कोई चर्चा चलती है, तो कुछ आधुनिकम्मन्य व्यक्ति संस्कृत-शिक्षा की आवश्यकता और महत्त्व को उपेक्ष्य मानने लगते हैं। उनकी उपेक्षा के पीछे किसी मत, सम्प्रदाय अथवा वर्ग का पूर्वाग्रह मिलेगा। संस्कृत-शिक्षा को अनुपयोगी, अनावश्यक और महत्त्वहीन ठहराने के भुलावे में डालने के लिए ऐसे व्यक्तियों के पास कुछ इने-गिने आक्षेप हैं जो सर्वत्र एक ही तरह से सुनाई दिया करते हैं। वास्तव में उन्हें अफवाह की संज्ञा देना अधिक सार्थक होगा। वे हैं-(१) संस्कृत एक मृतभाषा है (२) संस्कृत पण्डितों, पुजारियों और हिन्दुओं की भाषा है (३) संस्कृत का साहित्य नए युग की विचारधाराओं के अनुकूल नहीं है। वह प्रगतिवादी विचारों पर आधारित उन्नति में बाधक है (४) शिक्षा की दृष्टि से संस्कृत में परिमित ज्ञान है, आदि।

अपने स्वरूप से क्षीण होकर जो भाषा व्यवहार और प्रभाव की दृष्टि से अनुपयोगी हो चुकी हो, अथवा जिसका प्रचलन पूर्णत: अवरुद्ध हो चुका हो, वह **मृतभाषा** कहलाती है। प्राय: यह देखा गया है कि **मृतभाषा** कहते हुए लोग इस शब्द के अभिप्राय पर ध्यान नहीं रखते। प्राचीन मिस्र, असीरिया, बेबीलोन की भाषाएँ मृत भाषाओं की गणना में आती हैं। संस्कृत इस वर्ग में नहीं आती। केवल इसकी पुरातनता को देखकर ही लोग संस्कृत को मृतभाषा कह देते हैं। आंकड़ों के अनुसार, लगभग, दस हजार व्यक्ति अब भी प्रतिदिन संस्कृत को उपयोग में लाते हैं। कई हजार पाठशालाएँ, गुरुकुल, आश्रम, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय ऐसे हैं जहाँ नियमित रूप से संस्कृत के विविध विषयों का अध्यापन होता है। अनेक व्यक्ति वैदिक और लौकिक संस्कृत साहित्य का रुचिपूर्वक स्वाध्याय करते हैं। संस्कृत में पाक्षिक, मासिक, दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ निकल रही हैं। नाटक खेले जाते हैं, वाक्प्रतियोगिताएँ आयोजित होती हैं, गद्यात्मक-पद्यात्मक काव्य लिखे जाते हैं। सामान्य जनों में भी संस्कृत के अनेक तत्सम शब्दों का प्रचलन है। संस्कृत केवल भाषा ही नहीं, अपितु भाषाओं की जननी भी है। सभी भारतीय और भारोपीय आर्यभाषाएँ संस्कृतोत्पन्न हैं। इनमें साहित्य-रचना के लिए संस्कृत साहित्य का आधार लिया जाता है। सभी भाषाओं के कवि विशेषत: हिन्दी के कवि संस्कृत से शब्दावली तथा अन्य प्रेरणाएँ प्राप्त करके अपने काव्य की समृद्धि करते हैं। आधुनिक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली की पूर्ति भी संस्कृत ही कर रही है। संस्कृत

वह कोषागार है, जहाँ से इच्छानुसार शब्द-राशि प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार सभी भाषाओं पर संस्कृत एक साथ प्रभाव डालती है। यह भाषा केवल राष्ट्रीय स्तर तक ही सीमित नहीं है, अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रभाव रखने और सम्बन्धों को सुरक्षित रखने वाली भाषा है। चीन, तिब्बत, बर्मा, लंका, इण्डोनेशिया, साइबेरिया, कम्बोडिया, मंगोलिया, ईरान, टर्की, नेपाल, पाकिस्तान आदि देशों की भाषा, कलाकृति, धर्म, संस्कृति-सभ्यता को संस्कृत ने प्रभावित किया है और अब भी सांस्कृतिक सम्बन्धों को कायम रखे हुए है। इस प्रकार यह अन्तर-राष्ट्रीय स्तर की भाषा है। भारत में यह आर्य और आर्येत्तर भाषाओं को जोड़ने वाली कड़ी है। भारत के कण-कण के अन्तराल में जिसके साहित्य की प्रेरणाएँ, परम्परायें अनुस्यूत हैं, वह भाषा आज तो क्या आने वाले समय में भी आसानी से मृत नहीं हो सकती।

संस्कृत केवल पण्डितों-पुजारियों की अथवा केवल हिन्दुओं की धार्मिक भाषा है, ऐसा कहनेवालों को कदाचित् यह ज्ञान नहीं है कि जैन, बौद्ध तथा मुसलमानों का बहुत-सा साहित्य भी संस्कृत में है। धर्मनिरपेक्ष साहित्य भी संस्कृत में उपलब्ध है। नास्तिकों का जितना साहित्य संस्कृत में उपलब्ध है उतना बहुत कम भाषाओं में मिलेगा। नास्तिकों के अग्रणी चार्वाकों का सम्पूर्ण साहित्य संस्कृत में है। मुस्लिम शासनकाल, हर्षवर्धन और गुप्तकाल में संस्कृत कश्मीर के मुसलमानों की प्रिय भाषा रही है। कश्मीर में मुसलमानों के अनेक शिलालेख और कब्रों के लेख संस्कृत में मिले हैं। मुगल सम्राट शाहजहां ने अपने डुदरबार में संस्कृत के प्रख्यात कवि पण्डितराज जगन्नाथ को दरबारी कवि रख रखा था। इनके अतिरिक्त ईसाइयों ने भी अपना कुछ साहित्य संस्कृत में लिखा है और अनूदित किया है। धार्मिकता के अतिरिक्त वैज्ञानिक, ललित, शास्त्रीय, प्राय: सभी विषयों पर गहन चिन्तनपूर्ण साहित्य रचा गया था, जो अब भी उपलब्ध है।

नयी विचारधारा के पक्षधरों को यह भी आपत्ति है कि संस्कृत-साहित्य वर्तमान युग के अनुकूल नहीं ठहरता। उसमें वर्णित धर्म, कर्म, ईश्वर सम्बन्धी बातें प्रगतिवादी उन्नति में बाधक हैं। सम्भव है यदि नए युग का चिन्तन अथवा परम्पराएँ संस्कृत साहित्य के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित न की गईं तो वे पूर्णत: परिष्कृत न हो पाएँ! आज हम जिस मान्यता को प्रगति में अवरोधक समझते हैं, हो सकता है कल को वही साधक लगे। अपनी पुरातनता को छोड़कर उसके बदले कुछ विशिष्ट उपलब्धि यूरोप की अनुकृत नवीनता में पा लेंगे, यह एक लालसा मात्र है। हाँ, यदि पुरातनता के कुछ पक्षों से हमें मतैक्य नहीं है, या उनकी युगानुरूपता नहीं है तो उनका युगानरूपीकरण किया जा सकता है। हमारे सिद्धान्त, हमारी परम्पराएँ, हमारे आदर्श जिनकी अभिव्यक्ति संस्कृत साहित्य में हुई है, वे सार्वजनिक एवं सार्वकालिक हैं। मानवतावादी और वैज्ञानिक हैं। उनकी समकक्षता संसार की कोई संस्कृति-सभ्यता नहीं कर सकी और न निकट भविष्य में कर सकेगी। यही कारण है कि अत्यन्त पुरातन होने पर भी भारतीय संस्कृति और साहित्य आज भी गौरव के साथ जीवित हैं। कितनी ही संस्कृतियाँ धूलिसात् हो चुकीं या उनका स्वरूप विकृत हो गया अथवा परिवर्तित हो गईं, किन्तु भारतीय संस्कृति की मौलिकता अभी अक्षुण्ण है। संस्कृत मानवीय मूल्यों की धरोहर और नैतिकता का स्रोत है।

आज जनता में स्वार्थ, घूसखोरी, चोरी, अकर्त्तव्यता, अप्रेम, नैतिकहीनता आदि अमानवीय दुर्गुण पनप रहे हैं। संस्कृत साहित्य इस कमी को सहज ढंग से दूर कर देता है। उसका एक पक्ष दुर्गुणों के स्वरूप को उपस्थित करता हुआ चलता है तो दूसरा सत्शिक्षाओं के स्वरूप को और तीसरा दुर्गुणों से निवृत्ति तथा सत्शिक्षाओं की ओर प्रवृत्ति की प्रेरणा देता चरित्र-निर्माण करता हुआ चलता है। वह भौतिकवाद और आध्यात्मिकता के बीच की खाई को बड़े अच्छे ढंग से पाट देता है। ऐसे उपयोगी और जीवन्त धरातलवाले साहित्य की शिक्षा-प्रणाली में उपेक्षा रखना या उपयुक्त स्थान न देना हमारी अनभिज्ञता का परिचायक है।

देश को एकसूत्रता में बाँधे रखने का प्रयास संस्कृत की सहायता से सरलतापूर्वक किया जा सकता है। सांस्कृतिक रीति-रिवाजों व भाषा आदि की विभिन्नताएँ होना तो एक सामान्य बात है। सभी देशों में इस प्रकार की

विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। इस विषय में भारत की तो अपनी एक विशिष्टता भी है। वह है स्रोत की एकता और एकसूत्रता। इन विभिन्नताओं का संगम संस्कृत के सागर में हो जाता है। संस्कृत साहित्य में हिमालय एवं समुद्रावृत उस अखण्ड भारत का स्वरूप घुला-मिला है, जिसे हम आज सुरक्षित रखना चाहते हैं। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, अवर्ण-सवर्ण, आर्य-द्रविड़ दोनों छोरों से जुड़ा हुआ साहित्य सभी का समान रूप से प्रेरणास्रोत रहा है। एक ओर समस्त भारत की भाषाएँ संस्कृत वंशोत्पन्न हैं, तो दक्षिण तथा आर्यवंशेतर अन्य भाषाएँ संस्कृत से समृद्ध और प्रभावित हैं। संस्कृत से उन्हें आज भी लगाव है, अपनत्व भी। संस्कृत बहुत समय तक समस्त देश में एकता पैदा करने का प्रबल साधन बनती रही है और यह आज भी अपनी परम्परा को निभा सकती है।

समृद्ध शिक्षा-स्तर के लिए भी संस्कृत की उपादेयता सिद्ध होती है। यूरोपीय विद्वान्, जैसे प्रगाढ़ पाण्डित्य के लिए ग्रीक, लैटिन आदि पुरातन भाषाएँ अवश्य सीखते हैं वैसे ही भारतीय परिवेश के लिए संस्कृत-शिक्षण अपेक्षित है। उच्चस्तरीय शिक्षा में परिनिष्ठता अथवा आधिकारिक पाण्डित्य प्राप्त करने के लिए भी संस्कृतज्ञान अनिवार्य है। संस्कृत-साहित्य में अनेक विधाएँ चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई हैं। भारतीय शिक्षा-प्रणाली में बहुत विषय ऐसे हैं जो, संस्कृत-ज्ञान के बिना अधूरे रह जाते हैं। यथा, आर्यवंशीय भाषाओं के साहित्य में गहरी पैठ के लिए संस्कृत का ज्ञान अनिवार्य है, क्योंकि उनका धरातल संस्कृत-पोषित है। उनकी उत्पत्ति, निष्पत्ति, विस्तार, स्वरूप संस्कृत भाषा के ज्ञान से ही जाने जा सकते हैं। भाषा-विज्ञान के क्षेत्र में तो संस्कृत-ज्ञान के बिना एक कदम आगे नहीं चला जा सकता। चाहे उसका अध्येता कहीं का निवासी हो। क्योंकि, संस्कृत मूलवंशीय भाषाओं में से एक है। भारतीय और भारोपीय भाषाओं का अध्ययन-विश्लेषण तो उसके बिना सम्भव नहीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि भाषा-विज्ञान का एक अध्याय भी संस्कृत में हुए विश्लेषण के उद्धृत किए बिना पूर्ण नहीं कहला सकता। इसी प्रकार साहित्यिक सिद्धान्तों का जो चिन्तनात्मक विवेचन संस्कृत साहित्य में अभिनवगुप्त, आनन्दवर्धन, कुन्तल, मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ, क्षेमेन्द्र, भरतमुनि ने प्रस्तुत कर दिया है वही आज भी सर्वमान्य है।

इतिहास की खोज में जैसे ही मुग़लपूर्व युग में चलते हैं, तो संस्कृत, पालि, प्राकृत के ज्ञान के बिना रुक जाना पड़ता है। जितना हम प्राक्कालीन इतिहास का अन्वेषण करना चाहेंगे उतना ही हमें संस्कृत की शरण में जाना पड़ेगा। एक महत्त्वपूर्ण और बहुत बड़े युग का इतिहास संस्कृत साहित्य में ही अन्तर्निहित है। इस प्रकार विश्व और भारतीय सांस्कृतिक सभ्यतात्मक, भूगोलीय व अन्य जीवनगत इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण भाग संस्कृत-सापेक्ष है। ब्राह्मणग्रन्थ, पुराण, रामायण, महाभारत तथा अन्यान्य संस्कृत साहित्य के ग्रन्थ ही हमें प्राचीन इतिहास की रूपरेखा, रहन-सहन, परम्पराओं, सीमाओं का ज्ञान कराते हैं।

इस युग में आयुर्वेद के लिए उपयुक्त शिक्षण-व्यवस्था तथा अनुसन्धान की सुविधाएँ उपलब्ध न होने से आयुर्वेद के वरदानों को लोग भूल गए हैं। सम्प्रति चिकित्सा के लिए ऐलोपैथिक-प्रणाली अधिक प्रचलित एवं मान्य है। यह ठीक है कि यह प्रणाली बहुत अंशों में अपने आप में पूर्ण है और उपादेय भी। किन्तु इसके बावजूद भी आयुर्वेद-प्रणाली का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। यह अपने आप में एक पूर्ण चिकित्सा-प्रणाली है और इसकी उपादेयता भी अशंकित है। दोनों ही प्रणालियों में दक्ष व्यक्ति चिकित्सा में अधिक सफल पाए गए हैं। जीर्ण या पुरातन, वात, उदर सम्बन्धी या अन्य दीर्घ चिकित्सा की अपेक्षा रखने वाली बीमारियाँ ऐलोपैथिक प्रणाली के वश में नहीं आ पाती, जबकि आयुर्वेद इनकी चिकित्सा सरलता से करता है।

यह बात अलग है कि पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धति में शल्यकर्म प्रधान होने से अधिक प्रचलित हो गई है। किन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इससे पूर्व शल्यकर्म ही नहीं था। 'सुश्रुत' को उठाकर देखिए शल्यकर्म की शिक्षा देनेवाला एक अनूठा और प्रसिद्ध ग्रन्थ है। अनेकों शल्यशस्त्र और शल्यकर्म के उपाय इसमें बताए गए हैं। अन्तर इतना ही है कि यह विद्या 'सुश्रुत' के माध्यम से न लेकर हमने पाश्चात्य पद्धति से ली है।

इसीलिए इसे हम उन्हीं की देन समझते हैं। इसी प्रकार 'चरक' 'वाग्भट्ट' आदि ग्रन्थ भी आयुर्वेद के जगत् प्रसिद्ध चिकित्सा ग्रन्थ हैं। आयुर्वेद की अपनी एक प्रशंसनीय विशेषता यह है कि वह स्थानीय वस्तुओं और सर्वसुलभ प्राकृतिक पदार्थों से होनेवाली चिकित्सा है। आयुर्वेद में दैनिक उपयोगी पदार्थों का अनूठा विश्लेषण है। वृक्ष-वनस्पतियाँ, फूल-फल, अन्न, जड़ी-बूटियाँ, मिट्टी, धातु तथा शयन, जागरण आदि दिनचर्या के प्रत्येक पहलू पर विचार किया गया है। आयुर्वेद की मान्यता है, जो व्यक्ति जहाँ का निवासी है, वहीं के पदार्थ उसकी औषध हैं, वही उसके लिए गुणकारक हैं। वे देशकाल, वातावरण, जलवायु की समता के कारण उसमें विकृति पैदा नहीं करते। बहुधा देखने में यह आता है कि विदेशी औषधियाँ एक रोग को ठीक करती हैं, तो कोई अन्य विकृति छोड़ जाती हैं। आयुर्वेदीय औषधों में यह कमी नहीं है।

वास्तुकला, कृषि, पशु-चिकित्सा, नृत्य, गीत, संगीत आदि विभिन्न कलाओं के ग्रन्थ भी संस्कृत साहित्य में उपलब्ध हैं। विज्ञान की विधा से भी संस्कृत साहित्य परिपूर्ण है। ध्वनि सम्बन्धी अनेक सिद्धान्त, शून्य-सिद्धान्त, दशमलव-प्रणाली, नक्षत्र-विज्ञान, ऋतु-विज्ञान, पृथ्वी का आकर्षण सिद्धान्त तथा भौतिक शास्त्र सम्बन्धी अनेक खोजें संस्कृत साहित्य में हो चुकी हैं। वैज्ञानिक ग्रन्थों में यन्त्रसर्वस्व, बृहद्विमान-शास्त्र, लौहतन्त्रम्, विमान-चन्द्रिका, धातुसर्वस्वम्, आदि उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इनमें पृथ्वी, सभी धातुओं के भेद, विश्लेषण, शोधन-प्रकार, परीक्षण-विधि तथा अनेक यन्त्रों और विमानों के निर्माण की विधि दी गई है। लन्दन के राष्ट्रीय संग्रहालय के भारतीय कक्ष की प्रकाशित सूची में उपलब्ध अन्य अनेक ग्रन्थों के नाम देखे जा सकते हैं, जो उस युग की वैज्ञानिक उपलब्धियों के जीवन्त साक्ष्य हैं। इनके अतिरिक्त भास, कालिदास, अश्वघोष, भारवि, भर्तृहरि, भवभूति, हर्ष, बाण, सुबन्धु, दण्डी आदि रससिद्ध कवियों की रचनाएँ जितनी अपने समय में रुचिकर रही हैं उतनी ही आज भी हैं। विश्व की श्रद्धा भी संस्कृत के प्रति दिनों-दिन बढ़ती जा रही है, वह इसीलिए कि वे लोग संस्कृत-साहित्य में सहज अनुभूतियाँ, जीवनोपयोगी निष्कर्ष, अपूर्व अभिव्यक्तियाँ, रसिकता, लालित्य, समृद्धभाव और हार्दिक शान्ति पाते हैं। संस्कृत-साहित्य की विशेषताएँ बलात् उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य ज्ञान का भण्डार है। प्रत्येक क्षेत्र में उसकी उपयोगिता है। भारत की तो वह आत्मा ही है। उसे छोड़ देने से भारत के सभी पक्ष मृतप्राय: रह जाते हैं। वास्तव में आज का शिष्ट व्यक्ति संस्कृत-साहित्य से अपरिचित रहकर बहुत अर्थों में अधूरा ही रह जाता है। इस प्रंसग में मुझे स्वर्गीय राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के शब्द याद आ रहे हैं-"हमारी समस्त संस्कृति, साहित्य तथा जीवन उस समय तक अधूरा ही रहेगा, जब तक कि हमारे विद्वान्, विचारक, नेतागण और शिक्षाशास्त्री संस्कृत से अनभिज्ञ रहेंगे।" संस्कृत भाषा तथा उसका साहित्य पाश्चात्य विद्वानों के लिए तो एक गम्भीर अध्ययन का विषय बने और हम शिक्षाप्रणाली में उसकी उपेक्षा करें अथवा उपयुक्त स्थान न दें, यह हमारे लिए दु:ख और लज्जा की बात है। संस्कृत का अध्ययन-अध्यापन त्याग देने पर हम अपनी संस्कृति-सभ्यता को भी खो देंगे।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

उन्नति का कारण

जो मनुष्य पक्षपाती होता है। वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

मृत्यु सूक्त-६५

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्य

परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान डॉ. धर्मवीर जी के वेद-विज्ञान के अन्तर्गत प्रसारित व्याख्यानों की जनोपयोगिता को ध्यान में रखकर 'परोपकारी' में प्रकाशित किया जा रहा है। व्याख्यानों के लेखन का कार्य उनकी ज्येष्ठ पुत्री सुयशा आर्य कर रही हैं। -सम्पादक

प्रतीचीने माम हनीष्वाः पर्णमिवा दधुः।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा।।

हम वेद ज्ञान की चर्चा कर रहे हैं और इस वेद-ज्ञान की चर्चा में हम ऋग्वेद के १० वें मण्डल के १८ वें सूक्त की चर्चा कर रहे हैं, जिसे मृत्यु-सूक्त कहते हैं। इसका ऋषि यामायनः मृत्यु से जुड़ा हुआ और देवता पितृमेधः है। इस मन्त्र का प्रयोजन है कि मैं 'उसको' प्राप्त होऊँ। यह प्राप्त होना क्या चीज है? 'उसको' प्राप्त होने से क्या हो जाता है? 'उसको' समझने के लिये शब्दों पर आप यदि विचार करेंगे तो बात समझ में आ जायेगी। हम परमेश्वर की प्राप्ति को मोक्ष कहते हैं। मोक्ष को कैसे प्राप्त होते हैं? मोक्ष क्या है? यदि मोक्ष कोई वस्तु है, स्थान है तो यह शब्द ही उसके अनूकूल नहीं है। यदि आप इसको भाषा में भी बोलें 'मुक्ति है' तो वह भी कोई स्थान नहीं है। मुक्ति शब्द से, मोक्ष शब्द से क्या पता लगता है? मोक्ष का अर्थ है 'बन्धन से छूटना'। व्याकरण में **मुच्** धातु **छूटने** अर्थ में है, बन्धन के निवारण के अर्थ में है। तो मोक्ष क्या है-बन्धन से छूटना। अब बन्धन से कैसे छूटना? यहाँ दो परिस्थितियाँ हैं- एक संसार है, यह शरीर की परिस्थिति है और एक परमेश्वर है, यह आत्मा की परिस्थिति है। आत्मा को जहाँ अनुकूलता लगती है वह परमेश्वर है और शरीर को जहाँ अनुकूलता लगती है वह संसार है। तो अब किससे छूटोगे? वैसे तो लोग कहते हैं संसार से छूटना। संसार से छूटना जब आप कहते हो तो ऐसा लगता है कि जैसे यहाँ संसार को अलग से बन्धन मान करके बात की जा रही है। वास्तव में मन है, बुद्धि है, इन्द्रियाँ हैं और विषय है, यह सारा ही संसार है और यह संसार ही है, जो बन्धन है। इस संसार से जो छूटना है वह मोक्ष है।

संसार में दो स्थितियाँ हैं- एक जड़ की और एक चेतन की। जड़ का मन तो जड़ के साथ लगता है और चेतन का मन चेतन के साथ लगता है। 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में एक बड़ी रोचक चर्चा है, जो हरिण का बच्चा है उसे शकुन्तला पकड़ना चाहती है लेकिन वह अपनी माँ के पास भाग जाता है, वहाँ जाकर वह खड़ा हो जाता है, उसको देखता है उसका डर निकल जाता है तो कवि कहता है **सर्वः सगन्धेषु विश्वसि**, अपने जैसे लोग जहाँ होते हैं वहाँ वह आश्वस्त होकर, विश्वस्त होकर रहता है, निर्द्वन्द्व रहता है। वैसे ही जो जड़ है उसकी परिणति जड़ में होगी और जो चेतन है उसकी चेतन के पास जाने से होगी। अब यहाँ जड़ एक है इसलिए सबकी परिणति एक है। लेकिन यहाँ चेतन अनेक हैं, इसलिए आप यह नहीं कह सकते कि सारे घड़े बनकर मिट्टी में चले गए। हाँ, इतना कह सकते हैं कि सब चेतन एक स्थान पर हो गए, एक जैसे हो गए। वे एक जैसे हैं तो उसमें उनका मिलन स्वाभाविक है। तो मुक्ति क्या, मोक्ष क्या? आप कहते हैं संसार से छूटना, संसार से कब छूटोगे? जब शरीर से छूटोगे, क्योंकि संसार से जुड़े तो शरीर से ही हैं, यदि यह शरीर न होता तो संसार में आप कर क्या सकते थे। संसार की जो सत्ता है उसमें आपका प्रवेश, उसमें आपका व्यवहार शरीर से ही है। मनुष्य शरीर के द्वारा संसार से व्यवहार करता है इसलिये संसार से छूटना है तो किससे छूटा जाये। लोग कहते हैं शरीर से छूटा जाये, लेकिन शरीर से तो हर कोई छूट रहा है, जो भी मर रहा है वह शरीर से छूट रहा है, जिसको मार डाला जा रहा है वह

भी शरीर से छूट रहा है तो क्या ये सब मुक्त हो जायेंगे? नहीं, इन सबको मुक्ति नहीं मिल पायेगी, क्योंकि शरीर के हटने से शरीर के कुछ साधन तो आत्मा के साथ फिर भी रहते हैं-इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त। ये भी तो भौतिक हैं और ये भौतिक हैं तो ये किधर जायेंगे, भूतों के साथ जायेंगे। इसलिये बन्धन से मुक्ति केवल शरीर के छूटने से नहीं हो सकती। शरीर के छूटने से तो ऐसा हुआ कि आधे तो छूट गए, आधे फिर भी रह गए। आपको शरीर के माध्यम से जो बन्धन मिला हुआ था, जो दिखाई दे रहा था वह तो आपने हटा लिया, लेकिन जो आपको अभी दिखाई नहीं दे रहा है और है, उसको तो आपने हटाया ही नहीं है और यदि थोड़ा-सा भी बन्धन शेष रहता है तो वह बन्धन आपको फिर संसार में ले आयेगा। आप जहाँ से जाते हैं वहीं वापस आ जाते हैं, इसलिए इस शरीर के चले जाने पर भी मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, इन्द्रियाँ जब तक रहती हैं, तब तक हमारा संसार से मेल बना रहता है, छूट नहीं सकता। इसलिए हमें क्या करना पड़ेगा- जैसे हमारा शरीर छूट जाता है, ऐसे ही हमारा सूक्ष्म शरीर भी छूटना चाहिये। हमारे मरने को ही हम मुक्ति अर्थात् छुटकारा समझते हैं, किन्तु इतने मात्र से ना हम दुनिया से जाते हैं, ना दुनिया हमसे छूटती है।

जो लोग आत्महत्या करते हैं, वे गलत क्यों हैं? हम समझते हैं आत्महत्या करने से हमारा छुटकारा हो जाता है-

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽवृता:।
ताँस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना:।।

हम अपने आत्महनन से अपनी आत्मा को शरीर से पृथक् कर लेते हैं, किन्तु शरीर से पृथक् होने पर आत्मा संसार से पृथक् नहीं होता, क्योंकि उसका सूक्ष्म शरीर विद्यमान होता है इसलिए जो आत्महत्या करने का प्रयास है कि हम छूट जायेंगे, व्यर्थ हो जाता है। जब तक सूक्ष्म शरीर है, तब तक हम दूसरे शरीर में चले जायेंगे। जिस शरीर से हम छूटना चाहते हैं वह तो छूटा नहीं। एक को हम छोड़कर आये, दूसरा मिल गया। यह जो प्रयास है शरीर को जबर्दस्ती छोड़ने का, यह प्रयास गलत है, क्योंकि इससे आप सब कुछ को नहीं छुड़ा सकते। आत्मा से सब कुछ हटा नहीं सकते। सब मलिनता सब दोष, पाप हट नहीं सकते, इसलिये आत्महत्या करना कोई उपाय नहीं है। आत्महत्या करने मात्र से हमारा छुटकारा हो जायेगा यह सम्भव नहीं है। इसलिये उपरिलिखित मन्त्र में कहा कि वे अन्धकारयुक्त मार्ग को प्राप्त होते हैं, उनको प्रकाश का लोक प्राप्त नहीं होता, क्योंकि प्रकाश का लोक तो ज्ञान का लोक है और आत्महत्या करनेवाला ज्ञानपूर्वक आत्महत्या नहीं कर सकता। यदि उसे ज्ञान होता कि उसका छुटकारा नहीं है, उसे ज्ञान होता कि आत्मा अमर है, उसे ज्ञान होता कि जन्म का चक्र चलता रहता है, कर्मों का फल है, भोगना पड़ेगा, यह सब परिस्थिति उसे मालूम होती तो वह आत्महत्या करता ही क्यों? आत्महत्या दु:ख में, आवेश में कर लेता है, अतिसंवेगों के कारण कर लेता है, जब बुद्धि उसकी काम नहीं करती। इसलिए यहाँ कहा है कि यह जो मुक्त होना है, मोक्ष की प्राप्ति है वह जब तक शरीर है तब तक नहीं हो सकती, आप तब तक दु:खों से नहीं छूट सकते। इसके लिये दर्शन में एक बड़ा अच्छा सूत्र है कि जन्म व मिथ्याज्ञान, ये दु:ख के कारण हैं।

दु:खजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानाम् उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग:।

एक क्रम समझाया है। हमें दु:ख होता है, दु:ख क्यों होता है-जन्म के कारण, जन्म क्यों होता है-प्रवृत्ति के कारण, कर्मों के कारण होता है। कर्म दोष के कारण, दोष मिथ्याज्ञान के कारण होता है और मिथ्याज्ञान ज्ञान का अभाव होने से होता है। अब इससे छूटने के लिये क्या करना पड़ेगा? इससे छूटने के लिये कहा

उत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्ग:

जो चीज सबसे मूल में है, सबसे पहले उसे छोड़ो। वह क्या है-अज्ञान। जब अज्ञान को हम अपने अन्दर से हटा देंगे तो दोष हट जायेंगे। दोष हट जाने से प्रवृत्ति हट जायेगी, प्रवृत्ति हट जाने से जन्म हट जायेगा और जन्म हट जाने से मृत्यु हट जायेगी। अत: हमारे बन्धन का कारण जो बताया वह है अज्ञान और अज्ञान जब तक रहेगा तब तक हम बन्धन से मुक्त नहीं हो सकते। हमको न मुक्ति हो सकती, न ईश्वर दिख सकता। इसलिए मन्त्र में जो बात कही है कि यदि मैं इससे छूटना चाहता हूँ तो इसके कारण से छूटना पड़ेगा।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्- योगदर्शनकार भी यही कहता है कि सारे प्रपंच का जो मूल कारण है वह अविद्या है और शरीर के नाश से मेरी अविद्या का नाश नहीं होता। शरीर के नाश से मेरे कर्मों का नाश नहीं होता और वह जब तक नष्ट नहीं होता, तब तक मैं संसार के बन्धनों से नहीं छूट सकता। मोक्ष का अर्थ होता है बन्धन से छूटना और वह छूटना तब तक सम्भव नहीं है जब तक इस संसार का एक भी अंश मुझसे जुड़ा हुआ है। मुझे उससे सम्पूर्ण रूप से छूटना होगा। शरीर की हत्या करने से काम नहीं चलेगा, मुझे तो इसके अन्दर जो अज्ञान है उसको दूर करना पड़ेगा और जब मैं अज्ञान दूर कर लूँगा तो फिर मेरे लिये कहीं भी जाने की आवश्यकता नहीं है, मैं यहाँ रहते हुए ही उसको प्राप्त कर लूँगा। उसे प्राप्त करना, यही मुक्ति है।

मुक्ति किसी स्थान विशेष का नाम नहीं है। दु:ख से छूटना मुक्ति है, दु:ख और कुछ नहीं, बन्धन ही दु:ख है। एक व्यक्ति घूम रहा है, तो घूम रहा है, लेकिन उसे कहा जाये कि आप यहाँ से उठेंगे नहीं तो वह उसका बन्धन है और बन्धन उसे कभी सुख नहीं दे सकता, वह दु:ख देगा। इस बन्धन से छूटने का उपाय है कि मैं इसके कारण को समझूँ कि यह बन्धन मुझे हुआ क्यों? और जैसे ही मुझे पता लग जायेगा कि यह बन्धन क्यों हुआ तो अनायास ही मेरा वह कारण दूर हो जायेगा। कारण को मैं दूर कर दूँगा या कारण स्वत: छूट जायेगा और मैं बन्धन से स्वत: ही मुक्त हो जाऊँगा। इसके लिये यहाँ पर कहा, हमें जहाँ जाना है या जो चीज पानी है वह पाने से ज्यादा छोड़ना है। पाये हुए को पकड़ना है। पकड़ इसलिए नहीं पा रहे हैं कि हमारे हाथ में दूसरी वस्तुएँ हैं और जब तक दूसरी वस्तुएँ रहेंगी तब तक हमारा हाथ खाली नहीं होगा और तब तक हम दूसरी चीज को पास होने पर भी पकड़ नहीं सकेंगे। जैसे शेखचिल्ली की एक कहानी में एक बालक खम्भे को पकड़ कर खड़ा होता है और हाथ फैलाकर बेर ले लेता है, अब उस बेर तक मुँह नहीं जाता और हाथ छूट नहीं सकता, क्योंकि बेर गिर जायेंगे, तो उस बन्धन में वह रोता रहता है। आप हाथ काटना इसका उपाय समझते हैं तो आत्महत्या वाला रास्ता अपनाते हैं और यदि उसे नीचे अंजलि लगाकर बेर छोड़ने को कहते हैं तो आप मुक्तिवाला रास्ता अपनाते हैं। हमें इस बात की अच्छी तरह से जानकारी होनी चाहिये कि हमारे बन्धन का वास्तविक कारण क्या है? जब वास्तविक कारण का हमें पता लग जाता है तो हम उस बन्धन को दूर कर देते हैं और इसके द्वारा जो परिस्थिति हमको मिलती है वह स्वतन्त्रता की मिलती है, क्योंकि बन्धन परतन्त्रता का नाम है।

सर्वं परवशं दु:खं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतत् विद्यासमासेन लक्षणं सुखदु:खयो:।।

स्वतन्त्रता का नाम सुख है और परतन्त्रता का नाम दु:ख है। मोक्ष परतन्त्रता से छूटकर स्वतंन्त्र रूप में विचरण करने का नाम है और वह हमें उस परमेश्वर से प्राप्त होता है।

पढ़ाने में लाड़न नहीं करना योग्य है!

उन्हीं के सन्तान विद्वान्, सभ्य और सुशिक्षित होते हैं, जो पढ़ाने में सन्तानों का लाड़न कभी नहीं करते, किन्तु ताड़ना ही करते हैं, परन्तु माता-पिता तथा अध्यापक लोग ईर्ष्या, द्वेष से ताड़न न करें, किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

(स. प्र. स. २)

मनुष्यों को चाहिये कि अपने पुरुषार्थ से सुवर्ण आदि धन को इकट्ठा कर घोड़े आदि उत्तम पशुओं को रक्खें क्योंकि जब तक इस सामग्री को नहीं रखते तब तक गृहाश्रमरूपी यज्ञ परिपूर्ण नहीं कर सकते इसलिये सदा पुरुषार्थ से गृहाश्रम की उन्नति करते रहें।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.६३

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म की गहरी छाप- वैदिक सिद्धान्तों की और आर्यसमाज की अन्य मतों पर छाप की अब आर्यसमाज में गहरी और पठनीय चर्चा नहीं होती। तुलनात्मक धर्म अध्ययन करनेवाले आर्यसमाज में बीसियों विद्वान् मैं देखता रहा। उन्हीं की कमाई खाकर आर्यसमाज में ऋषि दयानन्द के 'भक्त प्रशंसक' नाम से लेख व पुस्तकें छपने लगीं। इससे वैदिक धर्म का प्रचार तो क्या बढ़ना था, सर सैयद अहमद ख़ाँ सरीखे कई अन्य मतावलम्बियों का प्रचार अच्छा होता रहा। ऐसे लेख व पुस्तकें लिखनेवालों ने कभी सर सैयद का एक पृष्ठ तक न पढ़ा न देखा। ऐसे लेखों से लाभ क्या मिलता।

मैंने कभी लिखा था कि ऋषि दयानन्द की समीक्षा तथा सम्पर्क से सर्वाधिक लाभ इस्लाम को तथा मुसलमान बन्धुओं को मिला। भले ही मुसलमान लाभान्वित होकर भी ऋषि दयानन्द को कोसने में ही लगे रहें। उपाध्याय जी के शब्दों में यह तो 'गुड़ का स्वाद लेते हुये गन्ने को कोसते जाओ' जैसी नीति है। आज मैं वैदिक धर्म की तथा ऋषि की इस्लाम पर छाप के विषय में सप्रमाण और ठोस कुछ सामग्री देने लगा हूँ। आर्यसमाज की भूख की प्रचण्डता देखकर समय मिला तो पुस्तक भी लिख दूँगा।

१. हज़रत मुहम्मद के चमत्कारों से इनकारी- सर सैयद की जीवनी 'हयाते जावेद' पृष्ठ ६१९ पर उनका स्पष्ट मत दिया गया है। पैग़म्बर के चमत्कारों का कुरान में उल्लेख ही नहीं और चमत्कार तथा भविष्यवाणियाँ, पैगम्बरी का कोई तर्क या प्रमाण नहीं है। लो! कादियानी-मिर्ज़ाई मत तो धड़ाम से धरा पर औंधे मुँह गिर गया।

२. इस ग्रन्थ में मज़हब की सच्चाई की कसौटी- महर्षि से लेकर आगे परोस दी गई है। ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के विरुद्ध कुछ न हो, यह है मज़हब की सच्चाई की कसौटी। महर्षि ने चाँदापुर शास्त्रार्थ, जालन्धर शास्त्रार्थ में यह वैदिक मान्यता मत-पन्थों के सामने रखकर एक धमाका कर दिया। सत्यार्थप्रकाश में भी इस पर खुलकर लिखा है। डॉ. गुलाम जेलानी ने तो ऋषि का डंका बजाकर और भी कमाल कर दिया।

३. मुसलमान शास्त्रार्थों में यह दुहाई देते रहे कि अल्लाह जो चाहे कर सकता है। ऋषि ने लेखनी व वाणी से इसका प्रतिवाद किया। सर सैयद के शब्द 'हयाते जावेद' के पृष्ठ ७८२ पर पढ़िये। "स्वयं खुदा हमारे पीछे पड़ा है कि यदि हम छोड़ना भी चाहें तो नहीं छूटता। इसी प्रकार हम भी ख़ुदा के ऐसे पीछे पड़े हैं कि यदि खुदा स्वयं चाहे तो हमको छोड़ नहीं सकता भला देखें तो ख़ुदा ख़ुद हमको अपने मनुष्य होने तथा अपनी प्रजा होने से निष्कासित तो कर दे। ख़ुदा की कुदरत (सामर्थ्य) से ही बाहर है।"

४. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ६२५ पर लिखा है, "चमत्कार किसी भी प्रकार से (Prophethood) नबूअत की, पैग़म्बरी की युक्ति नहीं हो सकता।"

५. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ५२६ पर भी लिखा है कि कुरान में हज़रत मुहम्मद के किसी चमत्कार का वर्णन नहीं है।

६. इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ८५८ पर अल्लाह को मकान तथा दिशा से (दायें-बायें) रहित (पाक पवित्र) माना गया। यह भी शास्त्रार्थ का विषय रहा।

७. "सृष्टि नियम कभी नहीं बदलते"। ये शब्द पृष्ठ ६२६ पर लिखे हैं। पं. लेखराम जी ने यही वैदिक मान्यता कादियाँ के इलहामी कोठे पर मिर्ज़ा कादियानी को कही। वह सृष्टि-नियम तोड़कर चमत्कार दिखाने की मान्यता पर अड़ा रहा। पं. लेखराम का बलिदान इसी अन्धविश्वास के उन्मूलन के लिये हुआ।

८. अलीगढ़ कॉलेज का नींव-पत्थर गोरे अंग्रेज वायसराय से रखवाने के लिये तिथियाँ बार-बार बदलनी पड़ीं। अन्ततः दिल्ली दरबार के पश्चात् नये वायसराय लॉर्ड लिटन द्वारा ८ जनवरी सन् १८७७ को कॉलेज का नींव-पत्थर रखा गया। यह भी स्मरण रहे कि २४ मई सन् १८७५ को महारानी विक्टोरिया के जन्मदिवस पर पहले मदरसे (स्कूल) का नींव-पत्थर रखा गया। कॉलेज तो बाद में बना। अंग्रेज-भक्ति के लिये महारानी का जन्मदिन शुभ माना गया। यह बताना भी आवश्यक था।

कुछ सुन्दर लेख पढ़ने को मिले- आर्यसमाज के पास कभी एक-एक विषय के कई-कई मर्मज्ञ लेखक तथा वक्ता और कुछ ऐसे विद्वान् भी थे जो कई-कई विषयों पर अधिकार रखते थे। प्रमाण उनको सदा उपस्थित रहते थे या यह कहो कि हमारे विद्वानों की तली पर धरे रहते थे। अब की स्थिति सबके सामने हैं। हाँ कुछ सज्जन जो लिखते तो रहते हैं, परन्तु कोई ग्रन्थ या दूसरों के लेख सामने रखकर एक नया लेख बनाकर दे देते हैं। कहाँ से सामग्री ली? किस आधार पर लिखा गया? अपना स्रोत बताते ही नहीं। इसी कारण मनुस्मृति पर नये-नये वक्ताओं व लेखकों को 'डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी का अवतार' कहा जाता है। आर्यसमाज में एक श्रीमान् पढ़ें, न पढ़ें अथवा कुछ विहंगम दृष्टि से लाभ ले लें, परन्तु मेरी छोटी-बड़ी कोई भी नई पुस्तक छपते ही मुझे पत्र लिखते रहे। ''पुस्तक मुझे भेजें या प्रकाशक से दिलवायें'', परन्तु लाभ लेकर पुस्तक का, लेखक के नाम का उल्लेख करने को अपनी प्रतिष्ठा-विरुद्ध मानते थे। इस प्रवृत्ति से समाज की भारी क्षति हुई है। इन्हीं दिनों कुछ नये-नये लेखकों के यथा पंचकूला से अनुभवी आर्य विद्वान् प्रो. कृष्णचन्द्र जी गर्ग के कुछ लेखकर पढ़कर मैं गद्‌गद् हो गया। उन्हें झट से चलभाष पर कहा, आर्यसमाज के लिये अपने जैसे सप्रमाण लिखनेवाले ४-५ युवा लेखकों का निर्माण कीजिये। यह समाज की भारी सेवा होगी।

मैं नये उदीयमान लेखकों के पठनीय लेखों को पढ़कर उनको प्रोत्साहित करने में कंजूसी नहीं करता। श्रीयुत धर्मेन्द्र जी 'जिज्ञासु' और अभय जी के सुन्दर, प्रेरक और खोजपूर्ण लेख पढ़कर समाज के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आशावाद और उत्साह बढ़ता है।

श्री मनीष गुलाटी के प्रति आभार- अमेरिका से श्रीयुत मनीष गुलाटी जी ने धर्मरक्षा, समाज-सेवा के लिये मुझे कुछ राशि भेजी। मेरा तो कार्य चल ही रहा है। मैंने उनसे प्राप्त राशि का पर्याप्त साहित्य उन्हीं के नाम पर सुयोग्य मिशनरी युवकों को प्रचार के लिये भेंट कर दिया। धर्मप्रचार में जुटे वे सुयोग्य युवक इस सहयोग को पाकर स्वयं को धन्य-धन्य मानते हैं। इनमें से दो सुशिक्षित युवक तो अबोहर क्षेत्र में ही सक्रिय समाज-सेवा कर रहे हैं।

यह बताना मेरे लिये गौरव की बात है कि गुलाटी जी का पैतृक जन्मक्षेत्र मेरे जन्मस्थान के पास था। इसका न तो गुलाटी जी को, न उनके पिताजी को और न मुझे ज्ञान था। उनके पिताजी को भी मैं जानता था। एक दिन पता चला कि यह मूलतः स्यालकोट ज़िला से हैं तो मैंने झट से उन्हें उस ग्राम के प्राणवीर आर्यों यथा सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् लेखक पं. विश्वनाथ जी आदि के कई प्रसंग सुना दिये। उस दिन से हमारी अभिन्नता और भी बढ़ गई। वैसे पहले से ही उनकी धर्मवीर जी से और मुझसे विशेष प्रीति रही है।

जब कभी हम दोनों को बिना माँगे कुछ भेंट किया, हमने सदैव परोपकारिणी सभा को अथवा किसी और मिशनरी योजना के लिये वह धन लगा दिया। आज ऐसे व्यक्तियों की कृपा से प्रचार हो रहा है। लीडरों को प्रचार से कुछ लेना-देना नहीं। गत बीस वर्षों से किसी नेता ने न मुझसे बात की है और न ही कभी किसी ने पत्र लिखा है। भेंट का तो प्रश्न ही नहीं। मेरा एक भी दिन समाज-सेवा, धर्मप्रचार के बिना नहीं जाता।

आर्यसमाज की भूल- दिसम्बर मास चल गया। किसी भी आर्यसाप्ताहिक पत्र में दक्षिण में बलिदान की अखण्ड परम्परा के जनक हुतात्मा वेदप्रकाश जी गुंजोटी (महाराष्ट्र) तथा शूर शिरोमणि भाई श्यामलाल वकील पर किसी ने दो पंक्तियाँ नहीं लिखीं। कोई कविता नहीं छपी। क्या यह पाप नहीं? दक्षिण में एक सामान्य परिवार में जन्मे वीर वेदप्रकाश ने इतिहास को एक नई दिशा दे दी। देशभर में लाखों व्यक्तियों को 'वेदप्रकाश' के बलिदान के पश्चात् 'वेदप्रकाश' नाम दिया गया।

दलितोद्धार की बातें राजनेता आज बहुत करते हैं। देश भर में किस राजनीतिक नेता को, कौन से हिन्दुत्ववादी सन्त, महन्त व नेता पर एक दलित विधवा की पुत्री को दुष्ट अपहरणकर्त्ताओं से बचाने के लिये लम्बे समय तक अभियोग की चक्की में पीसा गया? यह आर्यसमाज का तपस्वी नेता भाई श्यामलाल वकील ही था। स्वामी श्री सम्पूर्णानन्द करनाल वालों के एक प्रश्न के उत्तर में आज ही चलभाष पर उनको यह इतिहास बताया तो वह भी सुन कर दंग रह गये। शहीद श्यामभाई धर्मवीर जी के रिश्ते में सगी नानी के भाई अर्थात् नाना लगते थे।

डॉ. नन्दकिशोर की अथक समाज सेवा?- श्रीमान् नन्दकिशोर जी की स्वर्णिम अथक सेवाओं के लिये सुनने में आया है कि हमारे माननीय आचार्य सत्यसिन्धु जी होशंगाबाद में उनके नाम पर भव्य यज्ञशाला का निर्माण करवा रहे हैं। सत्यसिन्धु जी तथा गुरुकुलवासियों को हार्दिक बधाई। मेरे सम्पर्क में नन्दकिशोर विद्यार्थी-जीवन में ही आ गये थे। मैं उन्हें तभी अबोहर भी बुलवाता रहा। उनके जीवन की एक ऐतिहासिक महत्त्व की घटना का इस अवसर पर यहाँ देने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता। इस घटना का गुरुकुल होशंगाबाद से भी कुछ सम्बन्ध है। यह प्रसंग आर्यसमाज के लिये अत्यन्त प्रेरणाप्रद व महत्त्वपूर्ण है।

मैं एक बार गुरुकुल होशङ्गाबाद आमन्त्रित किया गया। नन्दकिशोर जी भी तब वहाँ पहुँचे हुये थे। अपना बेंत लिये हुए मेरे पास आ गये। पूछा, क्या यहाँ का पुस्तकालय देखा है? मैंने कहा, "आचार्य जी से कहा है कि अल्मारियाँ खोल दो, देखूँगा।" पुस्तकालय देखा, परन्तु उसमें मुझे कोई विशेष सामग्री मेरे काम की न मिली। यह सुनकर आप बोले, "क्या यहाँ मेरा पुस्तकालय भी देखा?"

मैंने कहा, "मुझे क्या पता कि यहाँ आपका भी पुस्तकालय है?"

यह सुनते ही झट से एक अलभ्य पत्रिका के कुछ अंकों की एक दुर्लभ फाइल लेकर आ गये। अपना बेंत घुमाते हुये कहा, "**इसमें से आर्यसमाज के इतिहास की विशेष घटनायें खोजकर समाज में जान फूँको। यह आप ही के लिये है।** इसे ले जाओ। खोजकर बताना कि क्या मिला?"

तब नन्दकिशोर जी ने मुझे यह भी बताया था कि कुछ सज्जनों ने आग्रहपूर्वक उनसे वह फाइल माँगी थी, परन्तु आपने कहा कि यह तो मैं जिज्ञासु जी को ही दूँगा। वही इससे इतिहास की नई और ठोस सामग्री खोजकर दे सकते हैं। सचमुच हुआ भी ऐसा ही। ईश्वर की अपार कृपा से और नन्दकिशोर जी की पवित्र भावना के फलस्वरूप मैंने जब इस फाइल के एक-एक पृष्ठ का सूक्ष्म अध्ययन करना आरम्भ किया तो मुझे ऋषि-जीवन सम्बन्धी एक ऐसा प्रमाण और ऐसी घटना मिल गई जिसकी खोज में मैं सन् १९४८ से लगा हुआ था। तब मैंने दसवीं कक्षा की परीक्षा देने के पश्चात् मास्टर लक्ष्मण जी की एक खोजपूर्ण पुस्तक में ऋषि-जीवन से जुड़ा एक अधूरा कथन पढ़ा। निरन्तर पचास वर्ष तक लम्बी खोज और पूछताछ के पश्चात् अकस्मात् उस फाइल से सारी जानकारी मिल गई।

मैंने निर्णय लिया कि सर्वप्रथम इसका अनावरण गुजरात प्रदेश में करूँगा, परन्तु गुजरात में इसका संकेत पाकर भी किसी ने इसके प्रसार के लिये सक्रिय रुचि न दिखाई।

मैं इसी प्रयोजन से पूज्य स्वामी सर्वानन्दजी के दर्शनार्थ दीनानगर गया। श्री स्वामी जी ने कहा, "कोई नई खोज जो की है, सुनाओ।" मानो मुनि ने मेरे मन की कामना चुरा ली। मैंने श्रद्धा से भरपूर हृदय से उन्हें सुनाया, "पटियाला राजद्रोह अभियोग के काल में मोरवी नरेश वाघजी लाहौर आये तो उन दिनों सनातनी, मुसलमान, ईसाई, मिर्ज़ाई, सिख सभी अंग्रेज सरकार की प्रसन्नता के लिये आर्यसमाज के विरोध में जो कुछ भी हो सकता था करते रहते थे। सनातन धर्म सभा का एक शिष्टमण्डल महाराजा मोरवी से मिलने आया तो महाराज ने उनसे अपनी बात कहने को कहा।"

शिष्टमण्डल ने **वाघजी महाराजा** से कहा, "आप सनातनधर्मी होने के कारण दयानन्द के मत से सनातन धर्म की रक्षा करें।" उनका कहना था कि महाराज defender of the faith होता है सो आप दयानन्द की निन्दा में कुछ कहें। महाराजा ने कहा, "**आपका अभिप्राय किस दयानन्द से है? मैं तो एक ही दयानन्द को जानता हूँ जिसके जन्म-स्थान का अभिमान मेरी रियासत को उपलब्ध है, उसने तो डूबते सनातन धर्म को बचा लिया। यदि इस महान् पुरुष का जन्म न होता तो आज समस्त हिन्दू, ईसाई मुसलमान हो गये होते और आपकी सनातन धर्म सभा का नाम तक भी न होता। मेरे हृदय में दयानन्द के लिये महती पूज्य बुद्धि है।**"

यह उत्तर पाकर शिष्टमण्डल पर घड़ों पानी पड़ गया। मुझसे सप्रमाण यह लुप्त प्रेरक प्रसंग सुनकर स्वामीजी ने कहा, "यह कहाँ से खोजकर लाये?" मैंने कहा यह

आपके हनुमान ब्रह्मचारी नन्दकिशोर के पुरुषार्थ से सफल मनोरथ हुआ हूँ। स्वामी जी महाराज ने होशंगाबाद गुरुकुल यात्रा में बेंतधारी उनके प्रिय ब्रह्मचारी से हुआ सब संवाद सुना तो स्वामी जी महाराज का रोम-रोम पुलकित हो गया। क्या आर्यसमाज नन्दकिशोर जी की कृपा से प्राप्त इस देन को गुजरात के घर-घर और गाँव-गाँव तक पहुँचायेगा। मैंने सम्पूर्ण जीवन-चरित्र में यह पूरा प्रसंग उद्धृत किया है।

नये-नये विवाद- देशवासी बिना किसी मतभेद के मातृभूमि की सेवा के लिये एकजुट होकर जी-जान से जन-कल्याण करें तो संसार में देश का गौरव होगा। यहाँ तो देशभर में घड़ी-घड़ी व्यर्थ विवाद होते ही रहते हैं। इससे देश का वातावरण विषैला व प्रदूषित होता है। कोरोना की औषधि के आविष्कार पर अखिलेश यादव ने देश के वैज्ञानिकों पर गौरव व्यक्त करने की बजाय राजनीतिक दलबन्दी का रोना आरम्भ करके अत्यन्त अशोभनीय कार्य किया है। श्री मोहन भागवत हिन्दू धर्म संस्कृति की नई-नई व्याख्यायें करते हैं तो श्री राहुल, श्री ओवैसी झट से अपनी प्रतिक्रिया देते हुये गोडसे का तराना छेड़कर उसे संघ तथा भाजपा से जोड़ना नहीं भूलते। उन्होंने कभी स्वामी श्रद्धानन्द के हत्यारे अब्दुल रशीद की भी निन्दा की क्या? अब्दुल रशीद ने वृद्ध रुग्ण संन्यासी जिसने संगीनों के सामने सीने को ढाल बनाकर नरसंहार रोका। उसने स्वतन्त्रता सेनानी धर्मसिंह पर दो फायर किये। अब्दुल रशीद जैसों को ओवैसी और राहुल भूल गये। ओवैसी को अपने दल व निजाम की कृपा से गुंजोटी, बीदर, गुलबर्गा, हुपला, धारुर, ईटे ग्राम, जानापुर आदि के सब हत्यारे भूल गये।

नाम ही कोई नहीं लिया जाता- हिन्दू समाज का श्री मोहन भागवत मान-सम्मान गौरव देखना चाहते हैं तो इसकी दुर्बलताओं, दुर्गुणों व रोगों को दूर करने के लिये इसके दोषों पर भी कभी तो अश्रुपात किया करें। पुराणकाल से चली आ रही अस्पृश्यता और जाति-पाँति का उन्मूलन तो करके दिखाओ। गैंगरेप की, हत्या की घटनाओं के समाचार पर दलित-अदलित की रागिनी छिड़ जाती है। किसी भी अधिकारी का नाम देश के किसी भी कोने में पूछिये, हुड्डा जी, यादव जी, गुप्ता जी, अरोड़ा जी, गहलोत जी, पवार जी...। नाम तो कोई बताता ही नहीं। प्रधानमन्त्री से लेकर, महाराष्ट्र, बंगाल, राजस्थान, हरियाणा, दिल्ली, कर्नाटक, गुजरात तक के मन्त्रियों के नाम नहीं उनकी जाति-पाँति के उल्लेख से उनकी चर्चा होती है। हिन्दू समाज के लिये क्या यह कलङ्क नहीं? इस पर कभी हिन्दुत्ववादी लीडर मनोवेदना प्रकट करते हैं? दलित-वर्ग के उद्धार के लिये जिन पुण्य आत्माओं ने बलिदान दिया उनका गुणकीर्तन करते हुये किसी हिन्दू नेता ने दो शब्द कहे? गाँधी जी ने स्वामी श्रद्धानन्द जी के हत्यारे को भाई कहकर महिमा-मण्डित किया या नहीं? और स्वामी श्रद्धानन्द जी ने काबुल में पत्थर मार-मार कर मारे गये दो मिर्ज़ाइयों की हत्या की कड़ी निन्दा की। अस्पृश्यता-निवारण के लिये जान वारने वाले बलिदानियों यथा वीर रामचन्द्र, वीर मेघराज म.प्र., शहीद भक्त फूलसिंह के नाम पर किसी सरकार ने समरसता दिवस मनाने की घोषणा तक नहीं की। कर्नाटक में एक ऐतिहासिक मन्दिर में एक दलित को प्रविष्ट होकर भगवान् के दर्शन करने से रोका गया तो कहा जाता है कि भगवान् पीछे के द्वार पर खड़े उस दलित को दर्शन देने पहुँचे। दलित भक्त और भगवान् की यह मूर्ति हिन्दू समाज की कलङ्कपूर्ण कुरीतियों का स्मारक है। क्या यह स्मारक हटाया नहीं जा सकता? ज्ञानपीठ अवार्ड प्राप्तकर्त्ता एक कन्नड़ साहित्यकार ने सन् १९२६ में गाँधी जी को सहस्त्रों देवदासियों के नारकीय जीवन से बचाकर उनके विवाह का आन्दोलन छेड़ने की विनती की। गाँधी जी साहस करके आगे न आये। उस साहित्यकार की आत्मकथा में यह पूरा प्रसंग दे रखा है। सुधारकों को स्मरण न करना और हिन्दूसमाज के दोष न दिखना, यह हिन्दू समाज को गौरवान्वित नहीं कर सकता।

साधु भी अब धर्म-प्रचार से दूर- महाराष्ट्र में तो न कोई नाम पूछता और न ही नाम बताता है। हर कोई जातिवाचक (surname) से ही अपना परिचय देता है। हिन्दू साधु भी अब धर्म-प्रचार, समाज-सुधार, परोपकार के कामो से दूर-दूर रहता है। साधु भी व्यापार करने, अपनी राजनीति चमकाने में लगे हैं। आडम्बरों को बढ़ाने से हिन्दुओं की उन्नति नहीं होगी।

लॉर्ड हार्डिंग बम केस के हुतात्मा- देशभर में

राजनीतिक दल अपने-अपने लीडरों की ऊँची-ऊँची मूर्तियाँ व स्मारक बनाने के अवसर खोजते रहते हैं। लॉर्ड हार्डिंग दिल्ली राजधानी बनने के स्मरणीय दिन शोभा-यात्रा के साथ निकले। अंग्रेजीराज की धाक जमाना उनका प्रयोजन था। एक क्रान्तिकारी ने उस भव्य शोभा-यात्रा पर बम्ब फेंका। वायसराय तो भले ही बच गया। अंगरक्षक तो मर ही गया। सरकार ने कई क्रान्तिवीरों को पकड़ा। यातनायें देकर फाँसी पर चढ़ाये गये उन क्रान्तिकारियों यथा प्रताप सिंह बारहट, भाई बालमुकन्द, वीर अमीरचन्द आदि की मूर्त्तियाँ या स्मारक दिल्ली में कहाँ हैं? न तो कांग्रेस को उनकी याद आई और न भाजपा को और न ही देवगोड़ा, गुजराल सरकारों को। जहाँ उन्हें फाँसी-दण्ड दिया गया वहाँ अब मौलाना आज़ाद के नाम पर कांग्रेस ने कॉलेज बनाकर क्रान्तिकारियों का उपहास उड़ाया। इससे बड़ा अपमान उनका क्या किया जा सकता है? अपने किये पर राजनीतिक दलों को लज्जा क्यों आवे?

चौदहवें समुल्लास पर ग्रन्थ लिखने का विचार- कभी एक अच्छी संख्या में कुछ मुसलमान सार्वदेशिक सभा के कार्यालय में आ गये। तब सभा-प्रधान लाला रामगोपाल ने अपने कार्यालय से उन्हें पुस्तक बिक्री-विभाग में साहित्य-बिक्री करनेवालों के पास खड़ा देखकर भाँप लिया कि ये आज किसी विशेष ही प्रयोजन से आये हैं। वह झट से वहाँ पहुँचे। पूछा, क्या चाहिये। मुझसे बात करो। उन्होंने उर्दू सत्यार्थप्रकाश की माँग की। लाला जी से बात करते हुये कहा, "इस ग्रन्थ के चौदहवें समुल्लास की समीक्षायें निराधार हैं। कारण, अनुवाद ही ठीक नहीं। स्वामी दयानन्द को तो उर्दू तक नहीं आती थी, अरबी कुरान के अर्थ कैसे कर दिये?"

लालाजी ने कुछ बात करके उन्हें फिर किसी दिन आने के लिये कहा। कहा कि उस दिन आपके मौलवियों को वह कुरान-अनुवाद दिखा देंगे जहाँ से ऋषि ने यह अनुवाद उद्धृत किया है। वे उस दिन चले गये। लालाजी को 'आर्य सन्देश' के उस समय के सम्पादक ने बता रखा था कि वह अनुवाद जिज्ञासु जी के पास है। लालाजी ने अति शीघ्र उस कुरान को लेकर मुझे दिल्ली पहुँचने के लिये लिखा।

मैंने लालाजी से कहा, इस समस्या का स्थायी समाधान एक ऐसी पुस्तक का प्रकाशन है जिसमें ऋषि के दिये अर्थ व मौलवियों के अर्थ आमने-सामने हों। मैंने सुझाव दिया कि पं. शान्तिप्रकाश जी अपनी सुन्दर टिप्पणियों सहित ऐसी पुस्तक का सम्पादन कर दें।

पण्डित जी का आग्रह था कि यह कार्य 'जिज्ञासु' करने में पूरे-पूरे समर्थ हैं। पण्डित जी को इस कार्य के करने के लिये मना लिया गया। अब आगे की कहानी क्या थी, जानें? यह कार्य पण्डित जी ने कर दिया फिर भी न हो सका। अब मुझे कुछ विशेष कार्य जीवन की साँझ में जो सुझाये जा रहे हैं उनमें एक मुख्य कार्य यह है। मैं शाह रफ़ीउद्दीन जी के ग्रन्थ का एक नया संस्करण ले भी आया हूँ। सम्भव है इसके सम्पादन में कोई नया उपयोगी बिन्दु और मिल जावे।

अब मैं देश-विदेश में बैठे अपने साहित्य के प्रेमियों से विचार-विमर्श करके पं. लेखराम बलिदान पर्व तक इस विषय में अपना निर्णय ले लूँगा। लगता यही है कि ईश्वरेच्छा भी यही है कि इस करणीय कार्य को इस वर्ष में सिरे चढ़ा दूँ। अगले वर्ष के कार्य शरीर की क्षमता देखकर फिर निर्णय लूँगा। आर्यजगत् के मूर्धन्य विद्वानों यथा डॉ. वेदपाल जी, डॉ. सुरेन्द्र कुमार जी, डॉ. ज्वलन्त जी, मान्या सूर्यादेवी जी से परामर्श करके इसे किसी ऐतिहासिक दिन आरम्भ कर दूँगा। प्रकाशन की व्यवस्था करनेवाले मेरे कई ऋषिभक्त कृपालु हैं।

भाई परमानन्द जी भी मेरी एक प्राथमिकता- इस वर्ष का एक और विशेष कार्य मेरे हृदय में गुदगुदी कर रहा है। पूज्य भाई परमानन्द जी की ऐतिहासिक 'आपबीती' का हिन्दी अनुवाद सुना है किसी ने प्रकाशित किया है। मैंने देखा नहीं इतना निश्चित है कि किसी आर्यसमाजी ने इसका सम्पादन व प्रकाशन नहीं किया। वैसे मेरे द्वारा लिखित भाई जी की जीवनी एक से अधिक बार छप चुकी है। मैं इसका अनुवाद सम्पादन करते हुये पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, स्वामी सर्वानन्द जी के मुख से सुने प्रसंग, उनकी टिप्पणियों तथा अपने विस्तृत सम्पादकीय देकर इसकी उपयोगिता बढ़ा दूँगा। हमारे समाज में भाई जी का नाम तो बहुत लिया जाता है, परन्तु उनके

नाम पर समाज ने किया कुछ नहीं। परोपकारी के प्रेमियों की प्रतिक्रिया व शुभकामनायें पाकर हरियाणा में भाई जी से जुड़े एक क्षेत्र में जाकर इसके आरम्भिक पृष्ठ लिखने का निश्चय कर लिया है। प्यारे प्रभु की कृपावृष्टि मुझ पर होती रहेगी। 'आपबीती' का दूसरा संस्करण जो लाहौर से छपा था इस समय मेरे सामने रखा है। इसका आनन्द स्वामी जी महाराज लिखित सोलह पृष्ठ का विस्तृत ऐतिहासिक प्राक्कथन डी.ए.वी. के बातूनी संचालकों ने आज तक अनूदित करके एक ट्रैक्ट रूप में भी नहीं छापा। इस पाप का प्रायश्चित्त जो करना चाहते हैं वे जोश से भरे हृदय को लेकर मुझसे बात करें। यह कार्य होकर रहेगा।

रोक न कोई सका अरमान के तूफ़ान को

स्वराज्य-संग्राम का एक पीड़ित आर्यग्रन्थ- आर्यसमाज के प्राणवीरों ने स्वराज्य-संग्राम में अकथनीय यातनायें झेलीं तो हमारे कई श्रेष्ठ ग्रन्थ भी विदेशी सरकार के अत्याचारों के कोल्हू में भाई परमानन्द सदृश पीड़े जाने में कहाँ पीछे रहनेवाले थे। ऐसे श्रेष्ठ ग्रन्थों में संस्कारविधि के एक अत्युत्तम संस्करण 'संस्कार दीपिका' उर्दू दुर्लभ ग्रन्थ भी है। इसकी चर्चा मैंने एक पिछले अंक में कुछ तो की। अब भाई परमानन्द जी की चर्चा के साथ फिर इसका उल्लेख स्वाभाविक और अनिवार्य हो गया है। भाई जी के कष्टकारी ऐतिहासिक अभियोग में इस ग्रन्थ के अनुवादक सम्पादक प्राणवीर पिण्डीदास जी के साथ यह ग्रन्थ भी कुचला गया। क्या-क्या नष्ट किया गया यह दर्दभरी लम्बी कहानी है। एक उपहासकार ने इसका सम्पादक अनुवादक लाला पिण्डीदास की बजाय नया खोज निकाला। इस अद्भुत ग्रन्थ की कुछ पठनीय सामग्री अनूदित करके मैंने विजयकुमार आर्य जी को दी थी। उन्होंने उसे प्रकाशित करके बड़ा यश पाया। धर्मवीर जी ने 'इतिहास के हस्ताक्षर' स्तम्भ को जन्म दिया था। पुनः आर्यसमाज की शोभा तथा परोपकारी की शान के लिये इसके 'मुखपृष्ठ एक' का फोटो 'इतिहास के हस्ताक्षर' के रूप में परोपकारी के जनवरी द्वितीय २०२१ में प्रकाशित किया गया है। छः सौ (६००) पृष्ठ के इस 'शहीद' ग्रन्थ का फोटो देखकर जिनका हृदय है, हृदय में अरमान व भाव भरे हैं और भावों में दर्द है वे झूम उठेंगे। मैं चाहता हूँ परोपकारी के ऋषि भक्त पाठकों के प्यासे नयन यह फोटो एक बार अवश्य देखें। इस शहीद को आर्यो! भूल मत जाना!

एक आहुति अपने आचार्य के लिए.....

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गोशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

ईश्वर-बहिष्कार का प्रयत्न

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

परोपकारी पत्रिका अपने 'ऐतिहासिक कलम से' नामक शीर्षक के माध्यम से पाठकों को कुछ ऐसे लेखों से परिचित करा रही है, जो 'आर्योदय' (साप्ताहिक) के सत्यार्थप्रकाश विशेषांक से लिये गये हैं। यह विशेषांक दो भागों में छपा था। पूर्वार्द्ध के सम्पादक श्री प्रकाशजी थे तथा उत्तरार्ध के सम्पादक पं. भारतेन्द्रनाथजी तथा श्री रघुवीर सिंह शास्त्री थे। यह विशेषांक विक्रम संवत् २०२० में निकाला गया था। यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि इस विशेषांक में जो लेख प्रस्तुत किये गये हैं वे पं. भारतेन्द्रनाथ जी ने विद्वानों से आग्रहपूर्वक लिखवाये थे, जो कि पण्डित जी अक्सर किया करते थे। उसी विशेषांक के कुछ चयनित लेख पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

टिप्पणी- ईश्वर को मानने और न मानने का झगड़ा आज का नहीं। सदियों से मनुष्य-समाज का एक हिस्सा ईश्वर को नकारता चला आ रहा है और उतने ही बल से बल्कि उससे भी अधिक बल से एक और हिस्सा ईश्वर को सिद्ध करता चला आ रहा है। प्रस्तुत लेख में ईश्वर के अस्तित्व पर प्रत्यक्षवादियों द्वारा किये गये संशयों का निवारण किया गया है। यह लेख लगभग ९५ वर्ष पूर्व आर्यसमाज के उद्भट विद्वान्, 'आस्तिकवाद' जैसी महान् पुस्तक के लेखक पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय जी ने लिखा था। यह लेख परोपकारी के पूर्व सम्पादक डॉ. धर्मवीर जी को किन्हीं आर्यसज्जन ने दिया था। इस लेख की उपयोगिता को देखते हुए इसे परोपकारी में द्वितीय बार प्रकाशित किया जा रहा है। -सम्पादक

जिस समय कोल्हापुर में बैठा हुआ मैं 'आस्तिकवाद' लिख रहा था, उसी समय 'प्रत्यक्षवादी' महाशय के ईश्वर-बहिष्कार सम्बन्धी लेख 'माधुरी' में छप रहे थे । इधर मैं आस्तिकता के अभाव को उन्नति तथा शान्ति में बाधक समझ रहा था, उधर मेरे 'प्रत्यक्षवादी' मित्र 'आस्तिकता' को ही भयंकर समझकर ईश्वर के बहिष्कार का प्रयत्न कर रहे थे।

एक ही समय में, एक ही देश तथा जाति की लगभग एक-सी परिस्थिति में रहते हुए दो मस्तिष्कों में परस्पर विरुद्ध विचार कैसे उत्पन्न हुए, यह मनोविज्ञान-वेत्ताओं के लिए एक जटिल समस्या होगी, परन्तु उन अनुसन्धानकर्त्ताओं को भी, जो ग्रन्थकारों के विचारों के क्रम से देश तथा काल का क्रम निकाला करते हैं, कुछ न कुछ विचार करने को सामग्री मिल सकेगी।

'आस्तिकवाद' लिखते समय यदि सब लेख मिल जाते, तो मुझे बड़ा हर्ष होता। मुझे इनके सम्बन्ध में गत अक्तूबर सन् १९२६ में, लगभग आठ मास पश्चात्, ज्ञात हुआ और मैंने इनको बड़ी ही उत्कण्ठा से पढ़ा।

एक बात में हम दोनों के विचार मिलते हैं अर्थात् रोग हम दोनों को एक ही दीख पड़ता है, परन्तु उसके निदान और उपचार में आकाश-पाताल का भेद है। 'प्रत्यक्षवादी' महाशय ठीक कहते हैं-

'सातवें आसमान पर मुहम्मद साहब का 'बुराक' पर चढ़कर जाना, रिजवाँ का इन्हें बहिश्त दिखलाना, महात्मा ईसामसीह का आसमान पर उठाया जाना तथा गरुड़ पुराण आदि की स्वर्गों और नरकों की कल्पनाएँ-सभी इस बात की साक्षी हैं कि धर्म केवल कल्पनामात्र है।' (माधुरी, वर्ष ४, खण्ड २, पृ. ६४१)

जहाँ शारीरिक हानि पहुँचाने के लिये नशेबाजी और दुराचार के अनेकों अड्डे होते हैं, वहाँ मनुष्य को मानसिक हानि पहुँचाने और निकम्मा बनाने के लिये धार्मिक अड्डे-गिरजे, मन्दिर और मस्जिदें भी हैं।' (पृ. ७७३)

'सिखानेवाले धनिक, पुरोहित और राजकर्मचारियों में कोई भी ईश्वर को नहीं मानता, पर हर एक ईश्वर मानने का ढोंग रचता है।' (पृ. ७७३)

'कितने झगड़े ईश्वर और धर्म के नाम पर होते हैं।

आज हिन्दू-मुसलमानों के बीच भारत में जो परिस्थिति है, इसकी जिम्मेदारी धर्म ही पर है। आज कुरान को हटा दिया जाय, तो आज ही भारत में सुख-शान्ति आ सकती है।' (पृ.५९)

धर्म की व्यवस्था हमेशा धन से खरीदी जाती रही है और अब भी खरीदी जा सकती है। डायर और ओ ड्वायर की क्रूरताओं का, पादरियों और मालाबार के मोपलों के राक्षसी कार्यों का मौलवियों ने समर्थन किया। (पृ. २१२)

किसी समय यूरोप में धर्म के नाम पर ऐसे अत्याचार हुए हैं कि उन्हें देखकर शैतान, जिसे धर्म के माननेवालों ने इतना बुरा चित्रित किया है, यदि सचमुच होता, तो लज्जा से सिर झुका लेता। यूरोप का धर्म इतिहास (History of Church) इसका साक्षी है। 'इनक्वीजिशन' के कानून ने क्या कुछ अत्याचार नहीं किया? यह कानून पुरोहितराज पोप की तृष्णा-पूर्ति के लिये, धर्म-विरोधी की खोज करके उसे प्रताड़ित करने के निमित्त बनाया गया था।' (पृ. २१३)

'धर्मान्धता के नाश के साथ ही साथ पाश्चात्य देशों के अभ्युदय का इतिहास आरम्भ होता है।' (पृ. २१३)

किन्तु इन बातों को मानते हुए भी मैं 'प्रत्यक्षवादी' महाशय के इस वाक्य से सहमत नहीं हूँ कि-

'मनुष्य जितनी जल्दी ईश्वर, खुदा या गॉड और धर्म, मजहब या रिलीजन को त्याग दे, उतना ही अच्छा।' (पृ. ६४१)

''यह सत्य है कि 'ईश्वर मूर्खों के लिये अन्धों का घर है।' (पृ. २१५) परन्तु मैं यह मानने के लिये तैयार नहीं कि 'बुद्धिमानों के लिये भी' ईश्वर अन्धों का घर है। वस्तुतः मूर्खता एक प्रकार का अन्धापन ही है। इसलिए 'मूर्खों' के लिये तो सभी चीजें 'अन्धों का घर है'। संसार में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो 'मूर्खों' के लिये अन्धों का घर नहीं, चाहे राजनीति को लीजिये, चाहे जीवन के छोटे या बड़े किसी अन्य विभाग को। मूर्खों के लिए तो अन्धकार ही अन्धकार है, परन्तु जिस बात का दुरुपयोग मनुष्य मूर्खता या थोड़े-बहुत अज्ञान के कारण करता है, उसका क्या ज्ञान प्राप्त करके, सदुपयोग नहीं कर सकता? आपने 'धर्मान्धता' के जो दोष दिखाये हैं, वे तो ठीक हैं, परन्तु क्या 'धर्म' और 'अन्धता', दोनों सहोदर भाई-बहन हैं? क्या इनका एक-दूसरे से पृथक्त्व सम्भव नहीं? क्या 'धर्म' के साथ में हम समाखेपन का ख्याल नहीं कर सकते?

हमको तो कुछ अन्य ही 'प्रत्यक्ष' होता है, और 'अनुमान' भी अन्य ही। जहाँ हम ऊपर लिखे अनुसार 'धर्मान्धता' के अत्याचार देखते हैं, वहीं हमें सहस्रों उदाहरण उन परोपकारियों, आत्मत्यागियों, दानियों, समाज-सेवियों, देशभक्तों और प्राणि-हितचिन्तकों के भी मिलते हैं, जिनके उच्च भावों का आदि स्रोत आस्तिकता ही थी। इस प्रकार के मनुष्यों का किसी देश या किसी काल में अभाव नहीं रहा। आपने बड़ी उत्तमता से उन मनुष्यों का चित्र खींचा है, जो ईश्वर-विश्वास या ईश्वर-भक्ति का ढोंग फैलाकर बहुरूपियों की भाँति लोगों को ठगते हैं, परन्तु आपके 'प्रत्यक्षवाद' में यदि इन उदाहरणों का समावेश है, तो उन असंख्य उदाहरणों का समावेश क्यों नहीं, जहाँ परोपकार, दान तथा आत्मत्याग का ईश्वर-विश्वास के कारण ही प्रकाश हुआ? जिस प्रकार एक ठग राजा का रूप रखकर प्रजा को ठग लेता है, परन्तु उससे सच्चे राजा पर दोष नहीं आता, जिस प्रकार ठग मास्टर का रूप रखकर लड़कों को ठग सकता है, परन्तु उससे सच्चे मास्टर पर दोष नहीं आता, जिस प्रकार ठग कोतवाल का रूप रखकर जनता को ठग सकता है, परन्तु उससे सच्चे कोतवाल पर दोष नहीं आता, उसी प्रकार यदि एक ठग या अनेक ठग ईश्वर-भक्तों का रूप रखकर संसार को ठग लें, तो सच्चे ईश्वर-भक्तों पर क्यों दोष आना चाहिये? कौन ऐसा बुद्धिमान् है, जो विषयुक्त अन्न से होने वाली हानि का अनुभव करके शुद्ध अन्न का भी तिरस्कार करने लगे? हम उसकी विद्वत्ता के लिये कौन-से शब्दों का प्रयोग करें, जो मदारी के खोटे रुपयों से धोखा खाकर सभी रुपयों को खोटा समझ बैठा है? हम यह मानते हैं कि लोगों ने धर्म के नाम पर बड़े-बड़े अत्याचार किये, परन्तु क्या इसी धर्म के नाम पर कोई पुण्य नहीं किया गया? यदि 'प्रत्यक्षवाद' में 'साहित्य-प्रमाण' भी लिया जा सके (और, मैं समझता हूँ कि अवश्य लिया जा सकेगा, अन्यथा हमारे 'प्रत्यक्षवादी' मित्र इतिहासों के अनेक उदाहरण न देते), तो धर्म के नाम

पर किए गए पुण्यों की संख्या पापों से कहीं अधिक मिलेगी और ईश्वर के नाम पर रक्षित लोगों की गणना भी ईश्वर के नाम पर सताये लोगों की गणना से कई गुनी होगी।

शायद लेखक महोदय के हृदय में इस बात का प्रभाव था। इसीलिए उनको यह कहना पड़ा-

'ईश्वर के पूजनेवाले, दासवृत्ति का समर्थन करने वाले कहते हैं कि यदि धार्मिक बुद्धिवालों को देश का या और किसी संस्था आदि का प्रबन्ध सौंपा जाय, तो वर्तमान समाज भी बुरा नहीं है। कानून बुरा नहीं होता, बर्तनेवाले ही बुरे होते हैं। ईश्वर बुरा नहीं है, उसकी आज्ञा को न माननेवाले ही बुरे हैं। राजा अच्छा भी होता है, बुरा भी। बुरा राजा बुरा है, बुराई बुराई है, न कि राजा का पद ही बुरा है।' (पृ. २१५)

परन्तु आप इसके खण्डन में कहते हैं- यह हमारे भोले भाइयों की नादानी है। मैं कहता हूँ, कानून क्यों हो? न कानून होगा, न कोई उसे बुरा बर्तेगा, न खुदा होगा, न उसके नाम पर हजारों-लाखों टन कागज रद्दी किया जायेगा। मनुष्य यदि सोचकर अपने समाज का संगठन करे, तो वह ईश्वर, राजा और कानून के बिना भी बहुत आनन्द के साथ रह सकता है।' (पृ. २१५)

आपके समस्त लेख की जान यह उद्धरण है, क्योंकि इससे आपकी उस विचार-सरणि का पता चलता है, जो आपको ईश्वर-बहिष्कार के प्रयत्न के लिये प्रेरणा करती है। आप कानून को मानना नहीं चाहते, इसीलिये राजा से रुष्ट हैं और इसीलिये ईश्वर से भी। 'न कानून होगा, न कोई उसे बुरा बर्तेगा।' न आँख होगी, न कोई उससे अनर्थ देखेगा? न हाथ होंगे, न कोई उनसे अत्याचार करेगा? न जीभ होगी, न कोई उससे गाली देगा? न मनुष्य होंगे, न लड़ाई-झगड़े होंगे? बड़ा सीधा इलाज है, भिन्न-भिन्न रोगों की एकमात्र औषध! एक अमृतधारा से शायद बहुत से रोग अच्छे हों, परन्तु 'प्रत्यक्षवादी' का ईश्वर-बहिष्कार और राज-बहिष्कार या कानून-बहिष्कार समस्त रोगों को एकदम नष्ट कर देगा। न मर्ज रहेगा, न मरीज।

परन्तु यदि आप कानून के ही विरोधी हैं, तो 'समाज का संगठन' कैसे होगा? और, आप 'पहले से अधिक संयमी, मनुष्य-भक्त एवं समाज-सेवा के प्रेमी' (पृ. २१५) कैसे बन गये? बिना कानून के 'संयम' कैसा? यदि एक व्यक्ति बिना कानून के 'संयमी' नहीं हो सकता, तो मनुष्य-समाज कैसे हो सकेगा? या तो आप अपने कहने के विरुद्ध यह मानें कि 'कानून बुरा नहीं होता, बर्तने वाले बुरे होते हैं', या यह कि यदि एक कानून बुरा है, तो उसकी जगह अच्छा कानून भी बनाया जा सकता है, परन्तु बिना कानून के तो आप एक कदम भी नहीं चल सकते। आप ठीक कहते हैं कि ''न्यायानुमोदित, धर्मानुमोदित या उचित यही है, जो बुद्धिग्राह्य हो, ज्ञानानुमोदित हो।'' (पृ. २१५) परन्तु क्या 'कानून' इस कसौटी पर नहीं कसा जा सकता? क्या आपको संसार में कोई कानून बुद्धिग्राह्य नहीं जँचता? यह तो सम्भव है कि बहुत-से कानून 'न्यायानुमोदित' न हों, परन्तु आप किसी कानून-विशेष की ही समालोचना नहीं करते, आप तो सभी कानूनों पर पानी फेर रहे हैं। ऐसा क्यों?

आपकी दूसरी कसौटी यह है कि 'मनुष्य-स्वातन्त्र्य का संरक्षक हो।' परन्तु आपने अपने समस्त लेख में इस स्वातन्त्र्य की विवेचना नहीं की। यदि हम इस 'स्वातन्त्र्य' का अर्थ आपके कानून-सम्बन्धी उद्धरण के सहारे निकालें, तो शायद यही है कि आप मनुष्य को समस्त कानूनों से स्वतन्त्र करना चाहते हैं, परन्तु क्या आप ऐसा करने में सफल होंगे? और, यदि सफल भी हो गए, तो क्या आप मनुष्य-समाज को शान्तिमय बना सकेंगे? सोचिए, आप तो 'प्रत्यक्षवादी' हैं। अन्य प्रमाण शायद आपके मत में ग्राह्य नहीं। फिर क्या आपने मनुष्य-समाज की उस दशा का भी प्रत्यक्ष विचार किया है, जिसमें किसी कानून का राज्य न हो, किसी राजा या राज्य के कानून न हों, किसी ईश्वर आदि का अवलम्बन न हो? आप कहते हैं-''मैंने गत २० वर्षों से खुदा की परवाह नहीं की। इससे मेरा कुछ भी हर्ज नहीं हुआ, उल्टे काम बहुत हुआ है'' (पृ. २१५)। क्यों साहब, कौन 'काम'? किसी 'कानून' के अनुसार काम या अन्धाधुन्धी काम? आप खुदा की परवाह करें या न करें। परन्तु क्या आपने उन नियमों की भी परवाह नहीं की, जिनके विषय में आप कहते हैं कि ''मनुष्य का कल्याण इसी में है कि वह नैसर्गिक नियमों के अनुसार

चले।'' (पृ. २१४) ये नैसर्गिक नियम कानून की कोटि में आते हैं या नहीं, इसकी कहीं विवेचना नहीं की गई। हाँ, यह बताया गया है कि इन नियमों का अनुसरण क्यों करना चाहिये। यथा- ''क्योंकि उनको उसी ने प्रत्यक्ष किया है। उसके सिर पर किसी व्यक्ति या समष्टि ने उन्हें जबरदस्ती नहीं लादा।'' (पृ. २१४)। 'उसने' किसने? मनुष्य ने? किस मनुष्य ने? अनुसरण करने वाले मनुष्य ने या उसके भाइयों या पूर्वजों ने? भाइयों या पूर्वजों के द्वारा प्रत्यक्ष किये हुए नियमों को तो आप जबरदस्ती लादना कहते हैं, इसलिये शायद आपका मतलब उसी मनुष्य से है। अच्छा, एक मनुष्य चोरी करता है। उसको कोई दण्ड दे, या नहीं? अन्य व्यक्ति उसे क्यों दण्ड दे? वह अपने प्रत्यक्ष के फल को उस पर 'जबरदस्ती' क्यों 'लादे'? रहा वह स्वयं। उसने तो प्रत्यक्ष किया नहीं कि चोरी बुरा कर्म है। उसका प्रत्यक्ष तो यही है कि चोरी की, और लड्डू खाये। न करता, तो शायद भूखों मरता। ऐसे प्रत्यक्षवादी तो वह हज़रत थे, जो कहा करते थे-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

हम आपके इस कथन से सहमत हैं कि ''जो ऐसे नियमों को मानते हैं, जिन्हें किसी डाकू या डाकुओं के गिरोह ने बनाकर अपने या कल्पित ईश्वर के नाम से जारी किया है, वे क्या वज्रमूर्ख नहीं हैं?'' (पृष्ठ २१४) आपकी तरह हमको भी ''पक्षपाती, निर्दय, कल्पित ईश्वर की जरूरत नहीं।'' (पृष्ठ २१४) परन्तु हम यह कैसे मान लें कि जिस ईश्वर ने आपको उत्पन्न किया, कान, आँख तथा मनुष्य का शरीर-रूपी उत्तम अंग दिये, जिसने इन इन्द्रियों से भोगने तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये अन्न-जल से लेकर सूर्य-चन्द्र पर्यन्त अनेकों और असंख्यों अद्भुत पदार्थ दिये, वह ईश्वर कल्पित और निर्दय है। जिस ईश्वर ने '**अहं ददामि गर्भेषु भोजनं**' के अनुसार आपको गर्भ में बढ़ने की सामग्री दी, जिसको शायद आप इस समय 'प्रत्यक्ष' नहीं कर सकते, और 'अनुमान' करना नहीं चाहते, जिस ईश्वर ने आपको इतना बड़ा किया और जो ईश्वर, इस बात के होते हुए भी कि आपने 'बीस वर्षों से उसकी परवाह नहीं की'' (पृ. २१५), इस समय भी आपकी परवाह कर रहा है, उसे निर्दयी कहना कल्पना नहीं, तो क्या है?

आप कहेंगे, मुझे किसी ईश्वर ने नहीं बनाया और न किसी ईश्वर ने गर्भ में भोजन ही दिया। मेरे ऊपर किसी ईश्वर की दया का एहसान नहीं है। क्योंकि 'ईश्वर एक ऐसा कल्पित पदार्थ है, जिसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया, इसलिए उसका अभाव है और जिस पदार्थ का अत्यन्ताभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता।' (पृ. ६४०) इसमें हम किसको प्रतिज्ञा कहें, किसको हेतु और किसको उदाहरण? ऐसी युक्तियों को लॉजिस्टिक फॉर्म देने में तो बाबा अरिस्टॉटेल की भी नानी मरती। पाठकगण जरा विचार करें। एक उद्धरण में इतनी बातें। गागर में सागर।

(१) 'ईश्वर कल्पित पदार्थ है।' क्यों?

(२) 'उसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया।'

पहली 'प्रतिज्ञा' है, और दूसरा 'हेतु'। अर्थात् यदि 'किसी ने' 'कभी' 'अपनी' 'ज्ञानेन्द्रियों' से 'प्रत्यक्ष' नहीं किया, तो वह 'पदार्थ' 'कल्पित' होता है। एक-एक शब्द पर विचार कीजिये। श्रीयुत परम पूज्य 'प्रत्यक्षवादी' महाशय ने 'कभी' 'अपनी' 'ज्ञानेन्द्रियों' से अपनी जननी के 'जननीत्व' या जनक के 'जनकत्व' को 'प्रत्यक्ष' नहीं किया। क्या मेरा यह हेतु ठीक है? मेरी 'कल्पना' तो नहीं? स्पष्ट बताइये, क्योंकि आपके समस्त लेख में 'कल्पना' शब्द का इतनी बार प्रयोग हुआ है कि उसके गिनने के लिये समय चाहिये। मुझे भय है कि आप शायद यह कह दें-'मुझे इसका प्रत्यक्ष हुआ है।' आप तो 'प्रत्यक्षवादी' ठहरे। अच्छा, कह दीजिये। क्या हर्ज है? शायद आपको 'प्रत्यक्ष' हुआ हो? परन्तु नहीं, जानता हूँ और यथार्थ जानता हूँ कि आप कभी ऐसा नहीं कहेंगे। मेरी यह 'कल्पना' नहीं, किन्तु दृढ़ विश्वास है कि आपको अपनी जननी के जननीत्व और जनक के जनकत्व का 'कभी' 'अपनी' 'ज्ञानेन्द्रियों' से 'प्रत्यक्ष' नहीं हुआ और न आज तक 'किसी' अन्य को हुआ। इसलिये क्या नतीजा निकला? चाहे तो लॉजिक या तर्क के साधारण विद्यार्थी से पूछिये, चाहे इन विद्याओं के किसी धुरन्धर विद्वान् गौतम

या अरिस्टॉटेल अथवा आधुनिक लॉजीशियन के पास जाइये, सब यही कहेंगे कि आपकी बताई हुई प्रेमिसेज (Premises) से तो आपकी पूज्य माता और पूज्य पिता, दोनों कल्पित ठहरते हैं, परन्तु शायद आप गौतम और अरिस्टॉटेल से नाराज हों? आप उनके पास क्यों जाने लगे? ये तो केवल 'प्रत्यक्षवादी' नहीं, ये तो हमारी तरह अन्य प्रमाणों को भी मानते हैं। अच्छा, तो आप स्वयं कुछ नतीजा निकालिये, परन्तु 'नतीजा' आप निकाल ही नहीं सकते। केवल 'प्रत्यक्षवाद' या 'शुद्ध प्रत्यक्षवाद' में तो नतीजा निकालने की गुंजाइश ही नहीं, परन्तु यदि आप 'शुद्ध प्रत्यक्षवादी' हैं, तो आपने ईश्वर के कल्पित होने का नतीजा कैसे निकाल लिया? आप शायद कहें कि हमने अपने पिता-माता के 'पितृत्व' का ज्ञान अन्य पुरुषों के कहने से प्राप्त किया, परन्तु नहीं, ऐसा आप हर्गिज न कहेंगे। क्या आप अपने मुँह से अपना ही खण्डन करेंगे? आपका तो मत ही है कि

''शुनीदा कै बुवद मानिंद दीदा''

अर्थात् सुनी बात देखी के बराबर नहीं हो सकती, परन्तु आपका तर्क यहीं समाप्त नहीं हो जाता है। पाठक कई बार पढ़ें। हर बार नई बात निकलेगी। उसी को फिर दोहराइए-

(१) 'ईश्वर कल्पित पदार्थ है।' क्यों?

(२) 'उसे कभी किसी ने अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं किया।' क्यों नहीं किया?

(३) 'इसलिये कि उसका अभाव है।'

फिर क्या? लीजिये एक और नया आविष्कार

(४) 'जिस पदार्थ का अत्यन्त अभाव है, उसका अस्तित्व कभी हो ही नहीं सकता।'

आप ईश्वर का अभाव सिद्ध करना चाहते हैं, उसके लिए हेतु क्या? यही कि उसका 'अभाव'-उसका अत्यन्त अभाव है इत्यादि-इत्यादि। इसी को कहते हैं 'दावा बेदलील।' आप 'दावे' को ही अनेक रूपों में प्रकट करते हैं और इसी का नाम दलील रखते हैं। क्या खूब। 'ईश्वर प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता?' इसलिए कि 'उसका अभाव है।' 'अभाव क्यों है?', इसलिए कि 'प्रत्यक्ष नहीं होता।' क्या यह 'अन्योन्याश्रय-दोष' का उदाहरण नहीं है?

परन्तु मैं पूछता हूँ कि आपने 'कभी' और 'किसी ने', ये दो शब्द क्यों प्रयुक्त किये? बिना 'अविनाभाव' माने हुए कोई इन दो शब्दों का प्रयोग करने का अधिकार नहीं रखता और 'प्रत्यक्षवाद' में 'अविनाभाव' माना नहीं जाता। हाँ, यदि आपका प्रत्यक्षवाद 'शुद्ध' न होकर 'विशिष्ट' हो, तो और बात है।

शायद पाठकगण यह शिकायत करें कि 'प्रत्यक्षवादी' शब्द के पीछे मैं इतना क्यों पड़ गया। परन्तु मैं यह कहता हूँ कि मेरा ऐसा करना अप्रासंगिक नहीं। वस्तुत: समस्त लेख में यही बात अनेक रूपों और अनेक शब्दों में दोहराई गई है कि ईश्वर प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिए कल्पित है। अन्य किसी हेतु के देने की चेष्टा ही नहीं की गई। हाँ, लच्छेदार इबारत में उन अत्याचारों को भी ईश्वर के नाम पर मढ़ दिया है, जिनके लिये सब सच्चे ईश्वरभक्त खेद प्रकट करते हैं और जो 'आस्तिकता' के कारण नहीं, किन्तु सच्ची आस्तिकता के अभाव के कारण प्रकट होते हैं। कौन नहीं जानता कि आजकल की हिन्दू-मुसलमानों की लड़ाई में मज़हब या ईश्वर का बहाना है, वास्तविक कारण राजनीतिक हैं। इसी प्रकार मौलवियों, पण्डितों या पादरियों के अत्याचारों या अनर्थों का कारण भी आस्तिकता नहीं, किन्तु कभी अज्ञान और कभी स्वार्थ होता है। यदि किसी डॉक्टर के उपचार द्वारा कोई रोगी मर जाय, तो आप क्या नतीजा निकालेंगे? क्या यह कि वह रोगी 'डॉक्टरी' विद्या के कारण मर गया? या डॉक्टर के अज्ञान, आलस्य अथवा स्वार्थ के कारण? स्वयं विचार लीजिये।

अब जरा आपके साइंस की भी परीक्षा कीजिए। आप लिखते हैं-

'संसार में जितनी वस्तुएँ हैं, वे चाहे कितनी भी सूक्ष्म क्यों न हों, सबका प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है और प्रकृति-जन्य सारे पदार्थ किसी न किसी दशा में इन्द्रिय-ग्राह्य होते हैं।' (पृ. ६४०)

ये दोनों बातें गलत हैं। सब सूक्ष्म वस्तुओं का 'प्रादुर्भाव प्रकृति से' हो ही नहीं सकता। एक 'जीव' को ही लीजिये, जिसे आपके कथनानुसार शंकराचार्य ने ईश्वर समझ लिया। (पृ. ६४१), यद्यपि शंकराचार्य का मत सर्वथा इससे उलटा था। उन्होंने जीव को ईश्वर नहीं समझा, किन्तु ईश्वर को

जीव समझा, परन्तु आपके लिये 'सब धान बाईस पंसेरी' हैं। चाहे आग को पानी समझें, चाहे पानी को आग, सब एक ही बात है। आप लिखते हैं-

'सम्भव है, रसायन-शास्त्र के अनुसार जीव भी दो या अनेक चीजों के मेल से उत्पन्न कोई स्थिति विशेष हो।' (पृ. ६४१)

कुर्बान जाइये इस तर्क पर! क्या यह 'प्रत्यक्षवाद' का तर्क है? 'सम्भव' प्रमाण भी प्रत्यक्ष के अन्तर्गत! शायद आपने 'अपनी' 'ज्ञानेन्द्रियों से इसे 'प्रत्यक्ष' न किया हो! अन्यथा आप इस 'सम्भव' के बोझ को 'जबरदस्ती' अपने ऊपर क्यों 'लादते', या दूसरों को 'लादने' की क्यों सलाह देते, परन्तु क्या आपने कभी जानने की कोशिश की कि साइंस क्या कहती है?

'पीराँ नमे परन्द मुरीदाँ मे परानन्द'

गुरु तो नहीं उड़ सकते, पर चेले उनको उड़ाते फिरते हैं। हम यहाँ अल्फ्रेड रसेल वालेस जैसे नामी और धुरन्धर साइंसवेत्ता की प्रसिद्ध पुस्तक 'जीवन-जगत्' की भूमिका से एक उद्धरण देते हैं-

".....The most prominent feature of my book is that I enter into a popular, yet critical examination of those underlying fundamental problems, which Darwin purposely excluded from his work as being beyond the scope of his enquiry. Such are, the nature and causes of Life itself, and more especially of its most fundamental and mysterious powers-growth and reproduction.

.....I argue, that they necessarily imply first a creative power, which so constitute matter as to render these marvels possible, next a directive mind, which is demanded at every step of what we term growth, and often look upon as so simple and natural a process as to require no explanation, and, lastly, ultimate purpose, on the very existence of the whole vast life-world in all its long course of evolution throughout the eons of geological time." (Preface, p. VI-VII)

लीजिये, नए युग का एक प्रसिद्ध साइंसवेत्ता और विकासवादी अपनी 'ज्ञानेन्द्रियों से 'प्रत्यक्ष' करके बिना किसी मौलवी, पण्डित या पादरी के बहकाने में आये हुए, प्रकृति और संसार के निरीक्षण से यह नतीजा निकालता है कि-

१. इस प्रकृति को चलाने वाली इससे भिन्न एक उत्पादक शक्ति (creative power) है ।

२. और, इस शक्ति में संचालक बुद्धि (directive mind) है।

३. जिससे अन्तिम प्रयोजन (ultimate purpose) का पता चलता है।

अब बताइये कि आस्तिक लोग 'ईश्वर' नाम के पदार्थ में यही बातें मानते हैं, या नहीं?

मैंने ऊपर कहा है कि आपने दोनों बातें गलत लिखी हैं। पहली यह कि 'सब सूक्ष्म पदार्थों का प्रादुर्भाव प्रकृति से होता है।' रसेल कहता है कि 'जीवन-जगत्' की वृद्धि आदि का प्रादुर्भाव केवल प्रकृति से नहीं हो सकता। इससे भी अधिक प्रकृति के निज संचालन के लिए (Which so constituted the matter as to render these marvels possible) उत्पादक-शक्ति, संचालक-बुद्धि आदि की ज़रूरत है। आपकी यह बात भी गलत है कि 'प्रकृति-जन्य सारे पदार्थ किसी न किसी दशा में इन्द्रिय-ग्राह्य होते हैं', क्योंकि आप स्वयं लिखते हैं-

'बिजली बहुत ही सूक्ष्म रूप की एक वस्तु है। आँख, कान, नाक आदि द्वारा इसे यों नहीं देख सकते। लेकिन बिजली की उत्पत्ति प्राकृत पदार्थों से होती है और जब हम उसका व्यवहार किसी रूप में करते हैं, तो द्रव्यों में उसको स्पष्ट देखते हैं कि काम कर रही है।'

यहाँ स्पष्ट हो गया कि बिजली प्राकृतिक पदार्थ होने पर भी इन्द्रिय-ग्राह्य नहीं, किन्तु उसका 'काम' अन्य 'द्रव्यों' द्वारा इन्द्रिय-गोचर होता है। आप तारों को देखते हैं, बिजली

को नहीं। और, केवल तारों की गति से नतीजा निकालते हैं कि इनमें विद्युत्-शक्ति काम कर रही है। आप बिजली को स्पष्ट नहीं, उसके काम को देखते हैं। किन्तु जब प्रकृति-जन्य सूक्ष्म पदार्थों को भी स्पष्ट नहीं देख सकते, तो उस ईश्वर को, जो प्रकृति-जन्य नहीं, प्रत्युत प्रकृति का संचालक है, किस प्रकार देख सकेंगे? और यदि अगोचर होने पर भी बिजली को कल्पित नहीं मानते, तो ईश्वर का अगोचर होना उसके कल्पित होने, अभाव या अत्यन्ताभाव को कैसे सिद्ध कर सकता है? यदि आप कहें कि हम बिजली को चाहे न देखें, किन्तु उसके काम को देखते हैं, तो हम भी कहेंगे कि हम ईश्वर को नहीं देखते, परन्तु उसके काम को देखते हैं। जिस प्रकार यदि तारे स्वयं हिल सकने की शक्ति रखते, तो आप कभी उनकी गति से बिजली के अस्तित्व का अनुमान न करते। इसी प्रकार यदि प्राकृतिक पदार्थों में स्वयं किसी वस्तु के बनाने आदि की शक्ति होती, तो हम उनकी उत्पत्ति आदि से ईश्वर के होने का अनुमान न करते, परन्तु रसेल वालेस-जैसे विद्वानों ने जगत् के जीवित पदार्थों का भली-भाँति निरीक्षण करके मालूम किया कि प्रकृति स्वयं अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने में असमर्थ है। अत: आवश्यक है कि उत्पादक और बुद्धि-सम्पन्न शक्ति को माना जाये। इस सम्बन्ध में आप लिखते हैं-

"प्राणों के उद्गम और विकास का आधार तथा जीवन के सर्वश्रेष्ठ प्रकट प्रकाश का मूल प्रकृति है। निष्पक्ष विज्ञान इस बात की गवाही देता है। वस्तु के विकास में, प्राणियों की उन्नति में हम देखते हैं कि पिछला रूप मिट जाता है और अभिनव विकसित उन्नत रूप उसका स्थानापन्न हो जाता है। मनुष्यता (सज्ञान पशुपन) में केवल पशुता के बीज का दिन-दिन ह्रास होता जाता है और ज्ञान का विकास। यह क्रिया नैसर्गिक है। इसी ज्ञान-वृद्धि के कारण प्रकृति के गुण, रहस्य मनुष्य को मालूम होते जाते हैं। इस विकासकाल में, विज्ञान के प्रचण्ड मार्तण्ड के प्रकाश में, सिवाय विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है, जो अन्धकार के समय कल्पित ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करेगा।" (पृ. ७७२)

अब हम आपकी बात मानें या रसेल वालेस की? रसेल वालेस 'अन्धकार के समय' का नहीं है। उसने 'विकासकाल में', 'विज्ञान के प्रचण्ड मार्तण्ड के प्रकाश में' 'प्रकृति के गुप्त रहस्यों' को जानकर ही यह नतीजा निकाला कि केवल प्रकृति, बिना ईश्वर की सहायता के, 'नैसर्गिक क्रिया' करने में असमर्थ है। यह वालेस वह मनुष्य है जो डार्विन के समय से विकासवाद-सम्बन्धी खोजें करता रहा और डार्विन की मृत्यु के पश्चात् बहुत मुद्दत तक उन बातों का अनुसन्धान करता रहा, जिनको उसने अधूरा छोड़ दिया था। 'सिवाय विक्षिप्तों के और कौन ऐसा हो सकता है', जो उसकी खोज के सामने सिर न झुकावे? आप लाप्लेस के विश्वक्रम-ज्ञान (System of the Universe) के भरोसे ही ईश्वर की आवश्यकता नहीं समझते (पृ. २१३) परन्तु मैं आपके ही शब्दों में कहता हूँ कि 'यह बीसवीं सदी का विज्ञानकाल है।' (पृ. ७७२) नेपोलियन के समय का विज्ञानकाल, जिसमें प्रत्येक साइन्स का विद्यार्थी भी अक्ल के पीछे लठ्ठ लेकर 'ईश्वर के बहिष्कार' का प्रयत्न करने लगता था, कभी का सेन-नदी में बहकर अटलांटिक महासागर में लुप्त हो गया।

आजकल के धुरन्धर साइंसवालों ने कई बातों में अपने विचार बदल दिये हैं और अनेक अंशों में अपनी तथा अपने साइंस की अल्पज्ञता स्वीकार कर ली है, परन्तु आप अभी बाबा आदम के जमाने को 'बहिश्त' और 'दोजख' तथा लाप्लेस के समय के साइंस की ही दुहाई दे रहे हैं। क्या आपने सर ऑलिवर लाज-जैसे प्रसिद्ध साइन्सवेत्ताओं की पुस्तकें नहीं पढ़ीं, और क्या आपने धार्मिक जगत् के अनेक परिवर्तनों का अध्ययन नहीं किया?

आपको शिकायत है कि 'जिस ईश्वर को ज्ञान का भण्डार' आदि माना जाता है, उसको 'गौतम, कणादि.....डिकार्ट' आदि नहीं सिद्ध कर पाए और 'वेद-शास्त्र केवल 'नेति-नेति' कहकर रह गए (पृ. ७७३)। इससे आप नतीजा निकालते हैं कि ईश्वर है ही नहीं, परन्तु यदि आप इन्हीं दर्जनभर दार्शनिकों की पुस्तकों का न्यायपूर्वक अवलोकन करें, तो ज्ञात होगा कि वे ईश्वर को मानने के साथ-साथ अपनी अल्पज्ञता को भी मानते थे। 'नेति-नेति' का अर्थ 'नास्ति-नास्ति' नहीं है और, न

'नेति-नेति' से 'नास्ति-नास्ति' की सिद्धि ही होती है, परन्तु आपके प्रत्यक्षवाद में जो कुछ न हो जाय, वह थोड़ा। मैं पूछता हूँ कि क्या प्रकृति के आप पूर्णज्ञ हो गए? क्या 'नैसर्गिक नियमों' का आपको पूर्ण ज्ञान है? यदि नहीं, तो क्या आप प्रकृति के विषय में भी एक अंश में उसी प्रकार 'नेति-नेति' का प्रयोग नहीं करते, जैसे वैदिक ग्रन्थों में ईश्वर के विषय में किया गया है? आप कहते हैं कि कोर्ट आदि ईश्वर की 'सन्तोषजनक व्याख्या' नहीं कर सके। इसलिए 'अवश्य ईश्वर का अभाव है।' (पृ. ७७३) परन्तु आपके किस साइंसवेत्ता ने उस प्रकृति की सन्तोषजनक व्याख्या' कर डाली, जिसके ऊपर आपको इतना नाज है? बेचारा न्यूटन तो ज्ञानसागर के तट पर कंकड़ियाँ ही बीनता रहा और आजकल के बड़े-बड़े साइंसवेत्ता भी इसी नतीजे पर पहुँचते हैं, परन्तु शायद आपने प्रकृति की 'सन्तोषजनक व्याख्या' कर ली होगी। तभी तो उपनिषद् कहते हैं कि-

आपने ५८वें और ५९वें पृष्ठ पर 'अल्लाह मियाँ की पैदाइश की तरफ ध्यान' दिया है और 'ईश्वर की जड़ खोदकर उसमें कैरोसिन तेल डालने' की चेष्टा की है, परन्तु हमको न तो उससे ईश्वर की पैदाइश का ही पता चला और न आपके केरोसिन तेल के ही दर्शन हुए। गर्जे तो बहुत, परन्तु वर्षा की एक बूँद भी न पड़ी। न युक्ति, न तर्क। केवल शब्द-जाल ही शब्द-जाल है। हाँ, एक प्रमाण अवश्य दिया और वह यह कि 'यह सब मनुष्य की ही कल्पना है, वास्तविक कुछ नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि मनुष्य ने जो कल्पना की, अपने ही रूप के अनुसार की। (पृ. ५९) परन्तु आपका यह प्रमाण भी अनर्थक ही रहा, और 'मारो घुटना, फूटे आँख' की कहावत चरितार्थ रही। आपको यही नहीं मालूम कि आस्तिक लोग ईश्वर में अनेकों ऐसे गुण मानते हैं, जो उनके निज गुणों के अनुरूप नहीं कहे जा सकते। जैसे 'सर्वव्यापक होना' 'जन्म-रहित होना', 'सर्वज्ञ होना', 'अनन्त होना' इत्यादि। यदि किसी देश या किसी काल के मनुष्यों ने ईश्वर में कुछ अपने गुणों का भी आरोप कर दिया, तो यह उनकी भूल थी, परन्तु इससे ईश्वर के अस्तित्व का कैसे खण्डन हो गया? आपके साइन्सदाँ (वैज्ञानिक) भी किसी पदार्थ में एक काल में एक प्रकार के गुण बताते हैं और दूसरे काल में अधिक ज्ञान होने से उसके विपरीत बताने लगते हैं। यदि यही नियम आप 'धर्म' और 'ईश्वर' के विषय में भी लागू रखते, तो कई पृष्ठों को भरने के कष्ट से बच जाते।

सच तो यह है कि आपके समस्त लेख को आद्योपान्त पढ़कर मुझे उसमें कोई युक्ति ऐसी नहीं मिली, जिससे आप ईश्वर के अभाव को सिद्ध कर सके हों। हाँ, 'दूसरी पुस्तक छपाकर अनेक प्रमाणों को संग्रह करने का वादा अवश्य किया है। जब पुस्तक छपेगी, तब देखा जायेगा, परन्तु कृपा करके प्रमाण दीजियेगा। केवल लफ़्फ़ाजी (शब्दजाल) या इधर-उधर की हाँकने से कुछ लाभ नहीं।

विद्या की प्रगति कैसे?

वर्णोच्चारण, व्यवहार की बुद्धि, पुरुषार्थ, धार्मिक विद्वानों का संग, विषय कथा-प्रसंग का त्याग, सुविचार से व्याख्या आदि शब्द, अर्थ और सम्बन्धों को यथावत् जानकर उत्तम क्रिया करके सर्वथा साक्षात् करता जाय। जिस-जिस विद्या के कारण जो-जो साधनरूप सत्यग्रन्थ है उन उनको पढ़कर वेदादि पढ़ने के योग्य ग्रन्थों के अर्थों को जानना आदि कर्म शीघ्र विद्वान् होने के साधन हैं। (व्य. भा.)

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

महर्षि दयानन्द का अग्निहोत्र में अद्‌भुत मन्त्र-चयन

जयदेव अवस्थी

महर्षि दयानन्द ने वेदानुकूल 'पंच महायज्ञ विधि' लिखकर संसार के मानवों पर परम उपकार किया है। इन पञ्चयज्ञों (ब्रह्म, देव, पितृ, अतिथि एवं बलिवैश्वदेव) में व्यष्टि से लेकर समष्टि तक के पञ्चभूतों का उपकार सन्निहित है। इसके विस्तार में जाएं तो एक अलग विषय बन जाएगा। अस्तु! अभी हम केवल देव-यज्ञ अर्थात् अग्निहोत्र के मन्त्रों के चयन के बारे में ही चर्चा करेंगे।

संसार की सभी मानव-जातियाँ, मत, सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में पूर्ण या आंशिक अग्निहोत्र करती हैं। उदाहरणत: पारसी निरन्तर पात्र में अग्नि जलाये रखते हैं। मुसलमान लोबान जलाकर सुगन्धि फैलाते हैं, ईसाई मोमबत्तियाँ जलाकर। हिन्दू घरों एवं मन्दिरों में अगरबत्ती व दीपक आदि जलाकर अग्नि का लाभ लिया करते हैं। तान्त्रिक ज्योत जलाकर अग्नि की पूजा करते हैं, परन्तु नि:सन्देह महर्षि द्वारा प्रणीत सुगन्धित, रोगनाशक, स्वास्थ्यवर्धक सामग्री शुद्ध घृत से सञ्चित एवम् वेद-मन्त्रों से उच्चारित 'अग्निहोत्र' जिसे 'हवन', 'अध्वर', 'यज्ञ' का नाम दिया जाता है-ही पूर्ण विज्ञान-सम्मत एवं लाभकारी है।

महर्षि द्वारा 'संस्कार विधि' में भी निर्देशित एवम् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा स्वीकृत एवम् प्रचारित आर्य-यज्ञ-पद्धति कमोबेश सारे संसार में सभी आर्यसमाजों द्वारा अनुपालित हो रही है। महर्षि ने इसमें मन्त्रों का यथास्थान अद्‌भुत चयन किया है। अग्नि-विज्ञान का भी पूरा ध्यान रखा है।

सबसे पहिले निर्देश किया है कि सामग्री में भी घी मिश्रित किया जाय-सूखी न हो। घृत-युक्त सामग्री की आहुतियाँ अग्नि को और प्रज्वलित करेंगे तथा पूर्णरूपेण सूक्ष्म कणों में परिवर्तित हो वातावरण को कृमि-विमुक्त, नीरोग, पवित्र एवं सुगन्धियुक्त कर यज्ञकर्त्ताओं को पूर्ण लाभ प्रदान करेंगी। उन्होंने सामग्री आहुति का परिमाण भी यज्ञ-कुण्ड के आयतन को देखकर ही देने का निर्देश किया है। छोटे से हवनकुण्ड में मुट्ठी भर-भर कर सामग्री की आहुति देने से वांछित लाभ की प्राप्ति नहीं होती, उल्टे अग्नि बुझ जाने से धुआँ हो सकता है जो बड़ा दु:खदायी होता है। एक सजग पुरोहित महर्षि के निर्देशों का यदि अक्षरश: पालन करता है तो यज्ञ में कभी धुआँ नहीं हो सकता।

आइये अब दूरदर्शितापूर्ण चयन किए गए मन्त्रों के कर्म-काण्ड की अनुपालना सहित व्याख्या करें-

अग्न्याधान हेतु सबसे पहिले "**ओ३म् भूर्भुव: स्व:**" की व्याहृतियों सहित दीपक जलाने का निर्देश है। इस मन्त्र का समय इतना ही है कि माचिस की तीली जलाकर दीपक प्रज्ज्वलित किया जा सके।

इसके पश्चात् "ओ३म् भूभुर्व: स्वद्यौरिव भूम्ना..." का लम्बा मन्त्र, उसके पश्चात् "उद्‌बुध्यस्वाग्ने..." का लम्बा मन्त्र जिससे कि हवनकुण्ड में पूर्व में ही सजाई हुई समिधाएँ, कपूर, घृत एवम् छोटी-छोटी समिधाओं की अग्नि से पूर्ण ज्वलनशील हो जाय।

इसके पश्चात् समिधादान के चार मन्त्र हैं। पहिला मन्त्र "ओ३म् अयन्त इध्म आत्मा..." यद्यपि वेद-मन्त्र नहीं है, परन्तु आश्वालयन गृह्य-सूत्र के इस मन्त्र का महर्षि ने इसलिये चयन किया कि यह एक लम्बा मन्त्र है तथा विषयानुसार इसका अर्थ भी अभीष्ट है। दूसरे तीन मन्त्र यद्यपि तुलना में छोटे हैं, परन्तु इन चारों मन्त्रों में तीन आठ-आठ अंगुल की अंगुष्ठ मोटी घृत-युक्त समिधाओं के श्रद्धापूर्वक प्रयोग का निर्देश है- वह इसीलिये है कि यज्ञ की अग्नि तीव्र हो जाये।

इसके पश्चात् "अयन्त इध्म आत्मा..." के लम्बे मन्त्र से पाँच घृताहुति देने का निर्देश इसलिये है कि यज्ञ-कुण्ड की सभी समिधाएँ पूर्ण प्रज्वलित हो जायें जिससे कि जल-प्रसेचन मन्त्रों के पश्चात् जो प्रात:कालीन मन्त्रों में सामग्री की आहुतियाँ दी जायेंगी वे अग्नि द्वारा पूर्ण भस्मसात् हो जायें।

जल प्रसेचन की क्रिया में अग्नि मन्द पड़ सकती है

अत: उसे प्रदीप्त करने के अभिप्राय से (सामग्री की आहुतियों के पूर्व) चार आज्यभागाहुति मन्त्र (यथा ओ३म् अग्नये, सोमाय, प्रजापतये एवं इन्द्राय) रखे हैं। इनमें से प्रथम दो (अग्नये एवं सोमाय) उत्तर, दक्षिण तथा पिछले दो (प्रजापतये, इन्द्राय) वेदी के मध्य में देने का इसीलिये निर्देश है कि चारों ओर यज्ञकुण्ड में सामग्री की आहुतियों के पूर्व अग्नि पुन: प्रज्वलित हो जाये।

अब प्रात:कालीन मन्त्रों से सामग्री की आहुतियाँ लगती हैं। अग्नि घृत एवम् समिधाओं के संयोग से पूर्णरूपेण प्रज्वलित है और संशोधित, संस्कारित सामग्री के कण-कण को गैस में परिवर्तित करने का वैज्ञानिक कार्य कर रही है।

प्रात:कालीन, सायंकालीन मन्त्रों के पश्चात् पूर्णाहुति प्रकरणम् में अग्नि को पूर्ण प्रज्वलित करने हेतु केवल घृत (दो आघारावाज्याहुति, दो आज्यभागाहुति, चार व्याहृत्याहुति) आठ छोटे-छोटे मन्त्रों की आहुतियाँ दी जाती हैं। उद्देश्य केवल यही है कि आगामी स्विष्टकृत् आहुति हेतु अग्नि खूब प्रज्वलित हो जाये जो मोहन भोग, खीर अथवा भात आदि को आत्मसात कर सके और बुझे भी नहीं। यहाँ स्विष्टकृत् आहुति हेतु इतना लम्बा मन्त्र इसीलिये रखा गया है कि हवनकुण्ड की अग्नि स्विष्टकृत आहुति को स्वीकार करने हेतु पूर्ण हो। स्विष्टकृत् आहुति के पश्चात् भी ओ३म् प्राज्यापत्याहुति केवल घृत की ही इसलिये दी जाती है कि जिससे जो भी शाकल्य अर्पित किया गया है- पूर्णरूपेण भस्म हो जाये और उसके उपयोगी तत्त्वों से वातावरण पूरित हो जाये।

बाकी के सारे यज्ञ में आहुतियाँ केवल घृत की ही होती हैं। पूर्णाहुति के तीन मन्त्रों से पहिले सामग्री के अनुकूल 'भूर्भुव: स्व:', तथा 'विश्वानि देव' की आहुतियाँ दी जा सकती हैं।

इस प्रकार महर्षि ने अग्निहोत्र में मन्त्रों का इतना यथास्थान ऐसा सुन्दर एवं उपयोगी चयन किया है कि उनकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी है।

जोधपुर, राज.।

वैदिक पुस्तकालय द्वारा प्रकाशित नया साहित्य

१. महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ **पृष्ठ : २१६** **मूल्य : १५०**

यह पुस्तक महर्षि के सभी शास्त्रार्थों का संग्रह है। यद्यपि सभा यह संग्रह दयानन्द ग्रन्थमाला में भी प्रकाशित कर चुकी है, पुनरपि पाठकों की सुविधा के लिए इसे पृथक पुस्तक रूप में भी प्रकाशित किया गया है।

२. महर्षि दयानन्द की आत्मकथा **पृष्ठ : ८०** **मूल्य : ३०**

महर्षि दयानन्द ने अलग-अलग समय व अवसरों पर अपने जीवन सम्बन्धी विवरण का व्याख्यान किया है। जिनमें थियोसोफिकल सोसाइटी को लिखा गया विवरण, भिड़े के बाड़े में दिया गया व्याख्यान एवं हस्तलिखित विवरण आदि हैं। इन सभी विवरणों को ऋषि के हस्तलिखित मूल दस्तावेजों सहित सभा ने एकत्र संकलित किया है।

३. काल की कसौटी पर **पृष्ठ : ३०४** **मूल्य : २००**

यह पुस्तक डॉ. धर्मवीर जी द्वारा लिखित सम्पादकीय लेखों का संकलन है। विषय की दृष्टि से इस पुस्तक में उन सम्पादकीयों का संकलन किया गया है, जिनमें धर्मवीर जी ने आर्यसमाज के संगठन को मजबूत करने एवं ऋषि के स्वप्नों के साथ-साथ उन्हें पूरा करने का मन्त्र दिया है।

४. कहाँ गए वो लोग **पृष्ठ : २८८** **मूल्य : १५०**

आर्यसमाज या आर्यसमाज के सांगठनिक ढांचे से बाहर का कोई भी ऐसा व्यक्ति जो समाज के लिए प्रेरक हो सकता है, उन सबके जीवन और ग्रहणीय गुणों पर धर्मवीर जी ने खुलकर लिखा है। उन सब लेखों को इस पुस्तक के रूप में संकलित किया गया है।

५. एक स्वनिर्मित जीवन - मास्टर आत्माराम अमृतसरी **पृष्ठ : १७४** **मूल्य : १००**

आर्यसमाज के आरम्भिक नेताओं की सूची में मास्टर आत्माराम अमृतसरी का नाम प्रमुख रूप से आता है। प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु द्वारा लिखी अमृतसरी जी की यह जीवनी पाठकों को आर्यसमाज के स्वर्णयुग से परिचित कराएगी।

शोक - समाचार

डॉ. अशोक आर्य जी

एक निष्ठावान् व्यक्तित्व

वह एक ऐसे व्यक्तित्व थे जो कभी भी शब्दों का प्रयोग न करके कर्म से अपने भावों की अभिव्यक्ति किया करते थे। आप नियमित रूप से ब्राह्म मुहूर्त में उठकर रात्रिपर्यन्त कर्मठता के साथ ऋषि दयानन्द जी के ऋण से उऋण होने का प्रयास किया करते थे। ऐसा व्यक्तित्व ८ जनवरी २०२१ को अपने जीवन के लगभग ७६ वर्ष पूर्ण करके इस संसार से विदा हो गये।

आप प्रकृति के प्रति पूर्ण जागरूक थे। वह पेड़-पौधों की सेवा अत्यन्त लगन से करते थे। आप अत्यन्त कर्मनिष्ठ, धर्मनिष्ठ, कर्मठ, सौम्य, सरल एवं सच्चे व्यक्तित्व के स्वामी थे। आपकी साहित्य-साधना जीवन के अन्तिम दिवस तक अनवरत रूप से चलती रही। उनके तीन पुत्र श्री अरुणेश, सुधाकर, सत्यवीर जी तथा एकमात्र पुत्री श्रुति सुधा है। पूरा परिवार उनकी पत्नी श्रीमती दर्शना देवी सहित दैनिक यज्ञ-प्रेमी है। मैं स्वयं उनकी श्रद्धाञ्जलि सभा में जो देहली में आर्यसमाज दयानन्द विहार में सम्पन्न हुई, सम्मिलित हुआ। वह प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' जी के अच्छे मित्रों में थे। प्रत्येक वर्ष परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित ऋषि मेले पर अवश्य पधारते थे। उनके निधन से समाज से एक निष्ठावान् व्यक्तित्व का अभाव हो गया है। ईश्वर उस क्षति को पूर्ण करे, ऐसी प्रभु से अपेक्षा है।

कन्हैयालाल आर्य

आचार्य भरतलाल शास्त्री

विनम्रता एवं कर्मठता के प्रतीक

८ जनवरी २०२१ को महर्षि दयानन्द का यह प्रबल योद्धा जीवन के ६६ वर्ष पूर्ण करके सदैव के लिए इस शरीर को त्यागकर अनन्त यात्रा पर चला गया।

आर्यावर्त्त भूमि सृष्टि के आदिकाल से ही ऋषियों से परिपूर्ण रही है। इस पावन भूमि पर समय-समय पर अनेक विद्वान्, मनीषी जन्म लेते रहे हैं, उसी शृंखला में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के अनुयायी पं. अगनलाल शास्त्री के सुपुत्र श्री भरतलाल शास्त्री जी का जन्म सन् १९५४ में हुआ। आपने माता-पिता से उत्तम संस्कार लेकर आर्यसमाज की प्रत्येक गतिविधि में बढ़-चढ़कर भाग लिया। आप सर्वप्रथम आर्यसमाज हांसी ज़िला हिसार में धर्माचार्य बन कर गये। आपकी ख्याति केवल हाँसी तक सीमित नहीं रही, आपने पूरे हरियाणा में विशेषकर मेवात क्षेत्र में वैदिक धर्म के नाद को खूब गुंजाया। पूरे हरियाणा में आप ने एक अच्छी पहचान बनाई। समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों एवं अन्ध परम्पराओं से लोगों को अवगत कराकर समाज से इन्हें दूर करने तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण करने में आप जीवनभर सफल प्रयास करते रहे।

आपका पूर्ण परिवार आर्यसमाज के संस्कारों से ओतप्रोत है। मैं स्वयं उनकी अन्त्येष्टि एवं श्रद्धाञ्जलि सभा में उन्हें श्रद्धासुमन अर्पित करने गया था। ईश्वर ऐसी क्षति को अवश्य पूरा करे ताकि समाज में धार्मिक जनों की सुगन्धि फैलती रहे।

कन्हैयालाल आर्य

विद्या के कोष की रक्षा व वृद्धि राजा व प्रजा करें

वे ही धन्यवादार्ह और कृत-कृत्य हैं कि जो अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा और विद्या से शरीर और आत्मा के पूर्ण बल को बढ़ावें जिससे वे सन्तान मातृ, पितृ, पति, सास, श्वसुर, राजा, प्रजा, पड़ोसी, इष्ट मित्र और सन्तानादि से यथायोग्य धर्म से वर्त्तें। यही कोष अक्षय है, इसको जितना व्यय करे उतना ही बढ़ता जाये, इस कोष की रक्षा और वृद्धि करने वाला विशेष राजा और प्रजा भी है।

(स.प्र. स. ३)

।। ओ३म् ।।

परोपकारिणी सभा स्थापना दिवस कार्यक्रम

(वर्चुअल=वेबिनार के द्वारा)

दिनांक २७-०२-२०२१ से २८-०२-२०२१ (शनिवार तथा रविवार)

शनिवार २७-०२-२०२१

प्रातः ०७.३० से ०९.३० यज्ञ, वेदपाठ, प्रवचन **डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार**

प्रातः १०.३० से १२.३० प्रथम सत्र

अध्यक्षता **डॉ. सुरेन्द्र कुमार** (संरक्षक परोपकारिणी सभा, सम्पादक परोपकारी पाक्षिक पत्रिका)

वक्ता **आचार्य सत्यजित् आर्य**, ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, अध्यक्ष एवं प्रबन्धक न्यासी वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ (अहमदाबाद)

[**विषयः** परोपकारिणी सभा का इतिहास]

श्री सज्जन सिंह कोठारी (ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, पूर्व लोकायुक्त राजस्थान सरकार)

[**विषयः** परोपकारिणी सभा की समाज को देन]

भजनोपदेशक **श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**

संयोजक **श्री कन्हैयालाल आर्य** (मन्त्री, परोपकारिणी सभा)

सायं ३.०० से ५.०० तक द्वितीय सत्र

अध्यक्षता **श्री ओम मुनि** (वरिष्ठ उपप्रधान परोपकारिणी सभा)

वक्ता **स्वामी विष्वङ्** (ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा)

[**विषयः** महर्षि दयानन्द की आध्यात्मिकता]

वक्ता **प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'** (इतिहास केसरी, उपप्रधान परोपकारिणी सभा)

[**विषयः** परोपकारिणी सभा की साहित्य को देन]

भजनोपदेशक **श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**

संयोजक **डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'** (ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा)

रविवार २८-०२-२०२१

प्रातः ०७.३० से ०९.३० यज्ञ, वेद पाठ, प्रवचन **डॉ. सुरेन्द्र कुमार**

प्रातः १०.३० से १२.३० तृतीय एवं समापन सत्र

अध्यक्षता **डॉ. वेदपाल** (प्रधान, परोपकारिणी सभा)

वक्ता **डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार**(अन्तरंग सदस्य परोपकारिणी सभा ओ.एस.डी. महामहिम राज्यपाल गुजरात)

[**विषयः** परोपकारिणी सभा की स्थापना का उद्देश्य]

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा (संयुक्त मन्त्री, परोपकारिणी सभा)

[**विषयः** परोपकारिणी सभा और पत्रकारिता]

भजनोपदेशक **श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**

संयोजक **श्री ओमप्रकाश आर्य** (ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, आचार्य गुरुकुल आबू पर्वत, राजस्थान)

विशेष:

१. प्रत्येक वक्ता तथा भजनोपदेशक का २५ मिनट का समय निश्चित है। अध्यक्ष समय एवं परिस्थिति अनुकूल चर्चा को पूर्ण करेंगे।

२. परिस्थिति अनुसार कार्यक्रम में परिवर्तन का अधिकार मन्त्री को होगा।

३. इस बार स्थापना दिवस का कार्यक्रम वर्चुअल एवं बेबिनार के माध्यम से होगा। अत: कार्यक्रम से १० मिनट पूर्व जुड़ने का प्रयास करें।

४. Zoom or Goggle meet आदि की I.D. तथा पासवर्ड की सूचना समय से पूर्व आपको दे दी जायेगी।

डॉ. वेदपाल
प्रधान
९८३७३७७९३८

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री
९९१११९७०७३

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
अष्टाध्यायी भाष्य (तीनों भाग)	५००	३५०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	८००	५००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	५००	२५०
पण्डित आत्माराम अमृतसरी	१००	७०
महर्षि दयानन्द के शास्त्रार्थ	१५०	१००
व्यवहारभानु:	२५	२०
महर्षि दयानन्द की आत्मकथा	३०	२०
वेद पथ के पथिक	२००	१००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	२००	१००
स्तुतामया वरदा वेदमाता	१००	७०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर। दूरभाष - 0145-2460120**

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 0008000100067176

IFSC - PUNB0000800

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

यजुर्वेद भाष्य का प्रकाशन

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत यजुर्वेद भाष्य (संस्कृत एवं हिन्दी-पदच्छेद, अन्वय, पदार्थ एवं भावार्थ सहित) का प्रकाशन चार भाग में किया जा रहा है।

महर्षि/वेदभक्त दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेदभाष्य प्रकाशन के महत्त्वपूर्ण कार्य में आर्थिक सहयोग प्रदान कर यशोभागी बनें।

प्रकाशन व्यय-

प्रथम भाग	(१-१० अध्याय)	७५,०००.००
द्वितीय भाग	(११-२० अध्याय)	१,११,०००.००
तृतीय भाग	(२१-३० अध्याय)	७५,०००.००
चतुर्थ भाग	(३१-४० अध्याय)	७१,०००.००

आपश्री सम्पूर्ण वेदभाष्य (चारों भाग), किसी एक भाग अथवा आंशिक रूप में रु. २१०००/- की राशि प्रदान कर सकते हैं। दानी महानुभावों का (सम्बद्धभाग पर) नामोल्लेखपूर्वक आभार प्रदर्शन किया जाएगा। अपनी सहयोग राशि **'परोपकारिणी सभा, अजमेर'** के नाम के खाते में जमा कर टेलीफोन द्वारा सूचित कर दें, जिससे रसीद भेजी जा सके।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

लेखकों से निवेदन

- लेखक कृपया अपने मौलिक व अप्रकाशित लेख ही भेजें।
- लेखक अपना पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या लेख के साथ अवश्य लिखें।
- परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।
- अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटायी नहीं जाती हैं।
- रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें।
- स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। **-सम्पादक**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते?
तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें, इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशित भी किय जात हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

परोपकारिणी सभा की गतिविधियाँ

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित उनकी उत्तराधिकारिणी सभा है और केवल नाम से ही नहीं, बल्कि अपने कार्यों से भी वह ऋषि के उत्तराधिकार के दायित्व को पूर्णतया निभा रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती

ने इस सभा की स्थापना के समय तीन उद्देश्य रखे थे।

१. वेदादि सत्यशास्त्रों का प्रकाशन २. विद्वान् उपदेशक तैयार करके देश-विदेश में वैदिक धर्म का प्रचार एवं ३. आर्यावर्त्तीय दीन-दरिद्रों की सेवा।

इन सभी कार्यों को सभा अपने विभिन्न प्रकल्पों के माध्यम से पूरा करने में सर्वसामर्थ्य से लगी हुई है। यद्यपि सभा के पास आर्थिक आय का कोई स्थाई माध्यम नहीं है, पुनरपि ऋषिभक्तों एवं आर्यजनों के सहयोग और विश्वास पर ही सभा ने बड़े-बड़े कार्यों को प्रारम्भ किया और निरन्तर कर भी रही है। आचार्य डॉ. धर्मवीर जी, जो कि वर्तमान में परोपकारिणी सभा के प्रधान एवं मूल स्तम्भ थे, उनका कहना था कि "**कार्य यदि अच्छा है तो उसे प्रारम्भ कर देना चाहिये, सहयोग तो स्वयं ही मिल जाता है।**" यही शैली अपनाकर आज भी वैदिक विचार के प्रचार का कार्य निरन्तर जारी है। डॉ. धर्मवीर जी के जाने से सभा को बड़ा आघात अवश्य लगा है, परन्तु आर्यों का स्नेह, भरोसा उनके द्वारा प्रारम्भ किये गये कार्यों को रुकने नहीं देगा-ऐसा सभा को पूर्ण विश्वास है।

परोपकारिणी सभा आज अनेक कार्यों, माध्यमों से इस वेद प्रचार यज्ञ में लगी है, जिसकी सूची यहाँ दी जा रही है-

भव्य ऋषि उद्यान आश्रम, अतिथि यज्ञ, भोजनशाला, गौशाला, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रम, गुरुकुल, परोपकारी पत्रिका, प्रकाशन, योग साधना एवं चरित्र निर्माण शिविर, सत्यार्थ प्रकाश व ऋषि जीवन चरित्र का नि:शुल्क वितरण, पाण्डुलिपियों का डिजिटलाइजेशन, पुस्तकालय, औषधालय, देश-देशान्तरों में वेद-प्रचार, आयुर्वेदिक औषधालय।

गुरुकुल के लिये प्रवेश-सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान-अजमेर में वैदिक धर्म एवं आर्यसमाज के उपदेशक तैयार करने हेतु उपदेशक कक्षा में प्रवेश प्रारम्भ हैं।

प्रवेशार्थी की न्यूनतम आयु १४ वर्ष तथा कक्षा आठ या उससे अधिक उत्तीर्ण हो। आर्ष-पद्धति से संस्कृत व्याकरण, दर्शन, उपनिषद्, वक्तृत्व कला तथा महर्षि निर्दिष्ट पाठ्यक्रम के अध्यापन की व्यवस्था है।

गुरुकुल में अध्यापन, भोजन एवं आवास नि:शुल्क है।

प्रवेश के इच्छुक अभ्यर्थी सम्पर्क करें-

आचार्य, आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर रोड, अजमेर।

दूरभाष- ०८८२४१४७०७४, ०१४५-२४६०१६४, ०१४५-२६२१२७०

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-**10158172715**

IFSC-SBIN0007959

२. बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-**091104000057530**

IFSC-IBKL0000091 email : psabhaa@gmail.com

दानदाताओं की सूची

अतिथि यज्ञ के होता

(१ से १५ जनवरी २०२१ तक)

१. श्री मुनीश गुलाटी, अमेरिका २. श्रीमती रतनकँवर लखोटिया, डांडेली ३. श्री बालमुकन्द छापरवाल, अजमेर ४. श्री रामानन्द व श्रीमती शकुन्तला छापरवाल, उत्तरकाशी ५. श्रीमती हविषा व श्री हिमांशु सिंहल, दिल्ली ६. श्री मोतीलाल शर्मा, जयपुर ७. डॉ. ऋतु माथुर, अजमेर ८. डॉ. प्रवीण माथुर, अजमेर ९. डॉ. राजेन्द्रप्रकाश माथुर, अजमेर १०. श्री राजाराम त्यागी, रुड़की ११. श्री नरेन्द्र आर्य, बैंगलोर १२. श्री कश्मीरीलाल सिंगला, गिदड़बाहा १३. श्रीमती अंजलि कपूर व डॉ. मुकुल कपूर, दिल्ली १४. श्रीमती रजनी ठाकुर, नई दिल्ली १५. श्री गौरव सिंह, मुजफ्फरनगर १६. डॉ. एस. हैनिमी रेड्डी व श्रीमती राज्यलक्ष्मी, नरसारावपेट १७. श्री आर. सत्यनारायण रेड्डी, हैदराबाद १८. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु १९. श्रीमती सुशीला शर्मा, अजमेर २०. श्री मुकेश कुमार, नई दिल्ली २१. श्री विशाल तँवर, नई दिल्ली २२. श्रीमती निर्मला मोहिन्द्रा, नई दिल्ली २३. श्री गजराजसिंह नई दिल्ली २४. श्री गौरवसिंह, नई दिल्ली २५. श्रीमती पुष्पा नासा, नई दिल्ली २६. श्री जयभगवान, दिल्ली २७. श्री चेतराम आर्य, रेवाड़ी २८. श्रीमती आभा व ऋचा, अजमेर २९. श्रीमती सन्तोष मदान, नई दिल्ली ३०. श्री वैभव चौहान, नई दिल्ली ३१. श्री सुरेन्द्र सिंह व श्रीमती सुमन वर्मा, नई दिल्ली ३२. श्रीमती पारुल चौहान, नई दिल्ली ३३. श्री रमेशचन्द्र आर्य व श्रीमती रेखा आर्य, नई दिल्ली।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गोशाला संचालित है। गोशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गो-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गोशाला के दानदाता

(१ से १५ जनवरी २०२१ तक)

१. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट २. श्री राधेश्याम शर्मा, अजमेर ३. श्री लखपत सिंह गहलोत, जोधपुर ४. श्री जे.पी. शर्मा व श्रीमती उषा शर्मा, अजमेर ५. श्रीमती रतन कँवर लखोटिया, डाडेंली ६. श्रीमती चन्द्रकान्ता बालमुकन्द छापरवाल, अजमेर ७. श्री रामानन्द व श्रीमती शकुन्तला छापरवाल, उत्तरकाशी ८. सुश्री वेदांशी आर्य, फरीदाबाद ९. श्री राजाराम त्यागी, रुड़की १०. श्री दयाराम आर्य, अलवर ११. श्री मानकचन्द जैन, छोटी खाटु १२. श्रीमती चन्द्रावती, अजमेर १३. श्री अनिल आर्य, सोनीपत १४. श्री आशीष कुमार एवं श्रीमती बबीता, दिल्ली १५. श्री चेतराम आर्य, रेवाड़ी १६. श्रीमती सन्तोष देवी शर्मा, अजमेर १७. श्री चिमनलाल शर्मा, अजमेर १८. श्री कन्हैयालाल, अजमेर १९. श्री नाथूलाल, भीलवाड़ा २०. श्रीमती चाँद देवी, अजमेर २१. श्री उमेशचन्द्र त्यागी, अजमेर।

अन्य प्रकल्पों हेतु सहयोग राशि

१. श्री भरत खोड़ा भाई आर्य, पाटन २. श्री ऋषभ गुप्ता, अम्बाला कैण्ट ३. श्री शास्त्री केशवदेव, अजमेर ४. श्री राम तोलवानी, अजमेर ५. श्रीमती अरुणा परीक, अजमेर ६. श्री ओमप्रकाश गुप्त, लखनऊ ७. सुश्री ऋजीषा आर्य, फरीदाबाद ८. श्री राजाराम त्यागी, रुड़की ९. श्री अशोक कुमार, सोनीपत १०. श्री युधिष्ठिर गुगलानी, सोनीपत ११. आर्य केन्द्रीय सभा, सोनीपत १२. श्री विक्रम राजपुरोहित, सिरोही १३. श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी, अहमदाबाद १४. श्रीमती उमा शर्मा, करनाल।

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती का अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' आर्यों का ब्रह्मास्त्र है। ऐसा ब्रह्मास्त्र, जिसने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अन्धश्रद्धा, अविवेक और पाखण्ड मानव समाज में सहज ही पनपने वाली समस्या है, इसलिये प्रत्येक काल, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक परिस्थिति में इन समस्याओं के उन्मूलन की आवश्यकता है-अत: 'सत्यार्थ प्रकाश' की आवश्यकता भी सदैव ही अनिवार्य रहेगी, परन्तु यह विचार जन-जन तक पहुँचे, तो ही लाभकारी होगा। इसी को ध्यान में रखते हुए परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष 'सत्यार्थप्रकाश' के साथ 'महर्षि का जीवन-चरित्र' एवं 'आर्याभिविनय' पुस्तक का नि:शुल्क वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है। इस कार्य के परिणाम भी बहुत सुखद रूप में सामने आये हैं। पुस्तक में कई व्यक्ति आकर कहते हैं कि हमारे पास यह पुस्तक है, हम पिछले वर्ष ले गये थे।

प्रत्येक आर्यमात्र की यह इच्छा होगी कि वह भी इस ग्रन्थ को वितरित कर पुण्य का भागी बने। इसके लिये सभा प्रत्येक आर्य को इस महायज्ञ में सम्मिलित करना चाहती है। प्रत्येक व्यक्ति यज्ञ में अपनी आहुति दे तो यज्ञ और अधिक भव्य एवं विस्तृत हो जाता है। 'सत्यार्थप्रकाश' 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' के नि:शुल्क वितरण रूपी यज्ञ में अपनी आहुति देने के लिये आप अपने सामर्थ्यानुसार सहयोग दे सकते हैं। परोपकारिणी सभा की ओर से ये पुस्तकें बड़े अक्षरों में, बढ़िया कागज पर, सजिल्द छापी जाती हैं, जिससे नये व्यक्ति के लिये भी पुस्तक संग्रहणीय बन जाती है। एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। **यदि कोई व्यक्ति अपनी सात्त्विक भावना से केवल २० पुस्तकें (इससे अधिक कितनी भी) ही वितरित करवाना चाहता है, तो सभा उतनी प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित करेगी। इसी प्रकार ३०, ५०, १००, १००० आदि।**

१५० रु. प्रति के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं। आहुतियाँ जितनी अधिक होंगी, यज्ञ का फल भी उतना ही अधिक होगा।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं। यह यज्ञ आपका है, प्रत्येक आर्य का है। अत: प्रत्येक आर्य इसमें अपनी आहुति अवश्य दे।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी और दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। दान अक्टूबर माह के अन्त तक भिजवा देवें, ताकि प्रतियों की संख्या निर्धारित करके उन पर दानदाताओं का नाम अंकित किया जा सके। धन्यवाद।

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं वैसे ही जगदीश्वर सबको उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४

ऋषि उद्यान आश्रम के सरस्वती भवन संग्रहालय में आर्यों के दर्शनार्थ रखी हुई महर्षि दयानन्द सरस्वती की वस्तुएँ

कमण्डल

खड़ाऊँ

रेत की घड़ी

तुम्बा

शाहपुरा नरेश द्वारा भेंट स्वरूप दिया गया शॉल

उदयपुर नरेश द्वारा भेंट स्वरूप दिया गया शॉल

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : ३०-३१ जनवरी २०२१ आर.एन.आई. ३९५९/५९

।। ओ३म् ।।

परोपकारिणी सभा स्थापना दिवस कार्यक्रम

(वर्चुअल=वेबिनार के द्वारा)

दिनांक २७-०२-२०२१ से २८-०२-२०२१ (शनिवार तथा रविवार)

शनिवार २७-०२-२०२१

प्रातः ०७.३० से ०९.३०	**यज्ञ, वेदपाठ, प्रवचन**
	डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार
	प्रातः १०.३० से १२.३० प्रथम सत्र
अध्यक्षता	**डॉ. सुरेन्द्र कुमार** *(संरक्षक परोपकारिणी सभा, सम्पादक परोपकारी पाक्षिक पत्रिका)*
वक्ता	**आचार्य सत्यजित् आर्य** *ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, अध्यक्ष एवं प्रबन्धक न्यासी वानप्रस्थ साधक आश्रम रोजड़ (अहमदाबाद)*
	[विषयः परोपकारिणी सभा का इतिहास]
	श्री सज्जन सिंह कोठारी *(ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, पूर्व लोकायुक्त राजस्थान सरकार)*
	[विषयः परोपकारिणी सभा की समाज को देन]
भजनोपदेशक	**श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**
संयोजक	**श्री कन्हैयालाल आर्य** *(मन्त्री, परोपकारिणी सभा)*
	सायं ३.०० से ५.०० तक द्वितीय सत्र
अध्यक्षता	**श्री ओम मुनि** *(वरिष्ठ उपप्रधान परोपकारिणी सभा)*
वक्ता	**स्वामी विष्वङ्** *(ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा)*
	[विषयः महर्षि दयानन्द की आध्यात्मिकता]
वक्ता	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु' *(इतिहास केसरी, उपप्रधान परोपकारिणी सभा)*
	[विषयः परोपकारिणी सभा की साहित्य को देन]
भजनोपदेशक	**श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**
संयोजक	**डॉ. वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'** *(ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा)*

रविवार २८-०२-२०२१

प्रातः ०७.३० से ०९.३०	**यज्ञ, वेद पाठ, प्रवचन डॉ. सुरेन्द्र कुमार**
	प्रातः १०.३० से १२.३० तृतीय एवं समापन सत्र
अध्यक्षता	**डॉ. वेदपाल (प्रधान, परोपकारिणी सभा)**
वक्ता	**डॉ. राजेन्द्र विद्यालङ्कार** *(अन्तरंग सदस्य परोपकारिणी सभा ओ.एस.डी. महामहिम राज्यपाल गुजरात)*
	[विषयः परोपकारिणी सभा की स्थापना का उद्देश्य]
	डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा *(संयुक्त मन्त्री, परोपकारिणी सभा)*
	[विषयः परोपकारिणी सभा और पत्रकारिता]
भजनोपदेशक	**श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य**
संयोजक	**आचार्य ओमप्रकाश आर्य** *(ट्रस्टी, परोपकारिणी सभा, आचार्य गुरुकुल आबू पर्वत, राजस्थान)*

विशेषः

१. प्रत्येक वक्ता तथा भजनोपदेशक का २५ मिनट का समय निश्चित है। अध्यक्ष समय एवं परिस्थिति अनुकूल चर्चा को पूर्ण करेंगे।
२. परिस्थिति अनुसार कार्यक्रम में परिवर्तन का अधिकार मन्त्री को होगा।
३. इस बार स्थापना दिवस का कार्यक्रम वर्चुअल एवं बेबिनार के माध्यम से होगा। अतः कार्यक्रम से १० मिनट पूर्व जुड़ने का प्रयास करें।
४. Zoom or Goggle meet आदि की I.D. तथा पासवर्ड की सूचना समय से पूर्व आपको दे दी जायेगी।

प्रेषकः

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

665 आजीवन

श्री मंत्री, आर्य समाज

15-हनुमान रोड़, नई दिल्ली, दिल्ली-110001